* श्री. *

श्री जैन बन्धुओं के लिये अपूर्व लाभ
चार अपूर्व रत्न ।

प्रिय जैन बन्धुओ !

यदि आप मानव जीवन के सच्चे ध्येय को जानना चाहते हैं, भव्य जीवों के कर्तव्य को समझना चाहते हैं, जैन सिद्धान्त के गूढ़ तत्वों को जानना चाहते हैं, धर्म, अधर्म, कर्मभेद, उनका फल, नवतत्व, भक्ति, शान्ति सुख, वैराग्य और दया आदि परम आवश्यक विषयों के यथार्थ स्वरूप को जानने की आपकी रुचि है तो सती शिरोमणि श्री १००८ श्री आर्या भूरसुन्दरी जी महाराज के बनाये हुए चार बड़े ग्रन्थों को नीचे लिखे पते से केवल डाक व्यय के लिए ।।)रु० भेजकर पढ़िये ।

मिट्ठनलाल कोठारी पन्नीलाल जैन,

स्वदेशी भण्डार, भरतपुर

श्री *

श्री पञ्चपरमेष्टिने नमः

भूरसुन्दरी ज्ञान प्रकाश

जिसको—

श्री जैन श्वेताम्बर सम्प्रदायस्थ श्री बाईस टोला के श्री १००८ श्री नाथूरामजी महाराज के सम्प्रदाय की आर्याजी श्री १००८ श्रीचम्पाजी महाराज की शिष्या सती शिरोमणि श्री १००८ आर्या भूरसुन्दरी जी महाराज ने निर्मित किया

जिसका

जयदयाल शर्मा शास्त्री (भूतपूर्व संस्कृत प्रधानाध्यापक श्री डूंगर कालेज बीकानेर) ने संशोधन किया

प्रथम बार १००० प्रति

वीर सं० २४४३
विक्रम सं० १९८६

न्यौछावर सदुपयोग

प्रकाशक—
मिट्ठनलाल कोठारी पल्लीवाल जैन,
स्वदेशी भण्डार
भरतपुर (राजपूताना)



मुद्रक—
सत्यव्रत शर्मा
शान्ति प्रेस, शीतलागली
आगरा।

* श्री *

समर्पण

श्रीमती सर्वोत्तम गुणसम्पन्ना, महासुशीला, सदा चारिणी, सतीवया, श्री चाँपावतजी साहिबा (धर्मपत्नी धर्ममूर्ति श्री कल्याणसिंहजी साहब श्रीनदी सर्दार राज्य अलवर) योग्य ।

महोदये !

यह छोटी सी पुस्तक आपके ही उत्साह और अनुरोध से बनाई गई है, आपका शिक्षा प्रेम और विद्यानुराग प्रशंसा के योग्य है, हार्दिक धर्मभाव और सदाचार के द्वारा आप नारीरत्न हैं, आपके इन्हीं गुणों को हृदयङ्गत कर यह पुस्तक आपके कर कमलों में समर्पित की जाती है, आशा है कि इस चिरस्थायिनी एवं परमोपयोगिनी लघु भेंट को स्वीकार कर इसके प्रकाशन के द्वारा सर्व साधारण का तथा विशेषतया स्त्री जाति का उपकार कर पुण्यभागिनी बनेंगी ।

भवदीया—आर्या भूरसुन्दरी

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

प्रथम परिच्छेद

१—पञ्च परमेष्ठि नमस्कार १

द्वितीय परिच्छेद

२—उपदेश के दोहे १६
३—बोध दायिनी शिक्षायें ४०
४—पहेलियां ५१

तृतीय परिच्छेद

५—स्त्री शिक्षा का उपदेश ५३



* श्री *

प्रस्तावना

प्रिय पाठकवर्ग !

मेरे बनाये हुए भूरसुन्दरी विवेक विलास, भूर-सुन्दरी बोध विनोद एवं भूरसुन्दरी अध्यात्म बोध नामक तीन ग्रन्थों को आप पढ़ चुके हैं। मुझे आशा नहीं थी कि आप मेरे इन ग्रन्थों का इतना बहुमान करेंगे, प्रत्युत मुझे तो यह ख़याल था कि यह सब मेरी कृति बुद्धिमानों के आगे बाललीलावत् समझी जावेगी, परन्तु सत्य है कि बुद्धिमान् सत्पुरुष नीर क्षीर विवेकी हंस के समान होते हैं, जो कि दोषों का परित्याग कर सार ग्रहण करते हैं, सज्जनों का जब यह स्वाभाविक गुण है तो उन्हें मेरी कृति का बहुमान करने के लिए धन्यवाद देने की भी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। हाँ, इतना कह देना अत्यावश्यक है कि यदि पूर्वानुसार सत्पुरुष भविष्यत् में भी

मुझे अपना निया और बुद्धि से हीन बालिका जान मेरी कृति को अपनाते रहेंगे तो मैं उनकी चिरबाधित रहूंगा ।

इस प्रकार निज कृति का बहुमान देख उत्साह में भर कर कतिपय सज्जनों के अनुरोध से भूरसुन्दरी विद्या विलास नामक चौथा ग्रन्थ और भी तैयार किया जा रहा है जो कि शीघ्र ही तैयार होकर प्रेस में जाने वाला है, आशा है कि सत्पुरुष पूर्वानुसार उसे भी अपना कर मुझे कृतार्थ करेंगे।

उक्त ग्रन्थ के सेवा में पहुँचने से पूर्व यह एक छोटी सी पुस्तक बीच में ही निर्माण कर पाठक वर्ग की सेवा में पहुँचाई जाती है इस पुस्तक का समर्पण अलवर राज्यान्तर्गत श्रीगढ़ी के सर्दार धर्ममूर्ति श्री ठाकुर कर्णसिंह जी महोदय की धर्म पत्नी के कर कमलों में किया जाकर उन्हीं महोदया के द्वारा आर्थिक सहायता को प्राप्त कर प्रकाशन किया गया है, उक्त महोदया परम सुशीला सदाचारिणी तथा सतान्या होने से नारी रत्न हैं आपके ही अनुरोध से यह पुस्तक लिखी भी

गई है, ऐसी दशा में इसका उक्त महोदया के कर कमलों में समर्पण भी नितान्त आवश्यक ही है।

इस पुस्तक में छोटे छोटे तीन परिच्छेद हैं जिनमें से प्रथम परिच्छेद में-चातुर्वर्ण्य रूप जैन संघ के परम माननीय पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार के आराधन के साधनभूत श्री नवकार मन्त्र के गुणन का महत्त्व प्रदर्शित कर उसके पांच पदों की आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी लिखी गई है, तथा उसके नीचे जैन सिद्धान्त सम्बन्धिनी परमोपयोगिनी शिक्षायें भी लिखी गई हैं, दूसरे परिच्छेद में सर्व साधारण के लिए अतिलाभदायक ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, धर्म और दया आदि विषयक उपदेशप्रद १०५ दोहे लिखे गये हैं, उनके पश्चात् कतिपय शिक्षा के वाक्य लिख कर अन्त में कुछ पहेलियाँ भी लिखी गई हैं जिन के पठन से बुद्धि के वृद्धि की सम्भावना है, तथा तीसरे परिच्छेद में स्त्री शिक्षा के विषय में एक लेख दिया गया है। पुस्तक कैसी है, इस विषय का निर्धार पाठकवर्ग की अनुमति पर ही निर्भर किया जाता है, हाँ इतना कह देना परम आवश्यक है कि इस के लेखों में जो

मुझे अपना निया और बुद्धि स हान बालिका जान मेरा कृति को अपनाते रहेंग तो मैं उनकी चिरबाधित रहूँगी।

इस प्रकार निज कृति का बहुमान देख उत्साह में भर कर कतिपय सज्जनों क अनुरोध से भूरसुन्दरी विद्या विलास नामक चौथा ग्रन्थ और भी तैयार किया जा रहा है जो कि शाघ्र ही तैयार होकर प्रस में जाने वाला है, आशा है कि सत्पुरुष पूर्वानुसार उसे भी अपना कर मुझे कृताथ करेंग।

उक्त ग्रन्थ क सेना म पहुँचन स पूर्व यह एक छोटा सी पुस्तक बीच में हा निर्माण कर पाठक वर्ग की सेवा में पहुँचाई जाती है, इस पुस्तक का समर्पण अलवर राज्यान्तगत श्रीगढा क सर्दार धर्ममूर्ति श्री ठाकुर कर्णसिंह जी महोदय का धर्म पत्नी क कर कमलों में किया जाकर उन्हीं महादया क द्वारा आर्थिक सहायता को प्राप्त कर प्रकाशन किया गया है, उक्त महादया परम सुशाला सदाचारिणा तथा सतावर्या होने से नारी रत्न हैं आपक ही अनुराध से यह पुस्तक लिखी भी

गई है, ऐसी दशा में इसका उक्त महोदया के कर कमलों में समर्पण भी नितान्त आवश्यक ही है।

इस पुस्तक में छोटे छोटे तीन परिच्छेद हैं जिनमें से प्रथम परिच्छेद में-चातुर्वर्ण्य रूप जैन संघ के परम माननीय पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार के आराधन के साधनभूत श्री नवकार मन्त्र के गुणन का महत्त्व प्रदर्शित कर उसके पाच पदों की आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी लिखी गई है, तथा उसके नीचे जैन सिद्धान्त सम्बन्धिनी परमोपयोगिनी शिक्षायें भी लिखी गई हैं, दूसरे परिच्छेद में सर्व साधारण के लिए अतिलाभदायक-ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, धर्म और दया आदि विषयक उपदेशप्रद १०५ दोहे लिखे गये हैं, उनके पश्चात् कतिपय शिक्षा के वाक्य लिखे जाकर अन्त में कुछ पहेलियाँ भी लिखी गई हैं जिन के पठन से बुद्धि के वृद्धि की सम्भावना है, तथा तीसरे परिच्छेद में स्त्री शिक्षा के विषय में एक लेख दिया गया है। पुस्तक कैसी है, इस विषय का निर्धार पाठकवर्ग की अनुमति पर ही निर्भर किया जाता है, हाँ इतना कह देना परम आवश्यक है कि इस ` ` ` । में जो

कुछ त्रुटियाँ हों उन्हें पाठकवर्ग सुधार कर मेरे परिश्रम को सफल करें।

इस पुस्तक का संशोधन श्रीमान विद्वद्वर्य श्री पण्डित जयदयालजी शर्मा शास्त्री (भूतपूर्व संस्कृत प्रधानाध्यापक श्री डूँगर कालेज-बीकानेर) ने किया है, अत उक्त महोदय को मुक्तकण्ठ से धन्यवाद दिया जाता है। यदि इस पुस्तक के पठन पाठन से पाठकवर्ग व पाठिका वर्ग का कुछ भी उपकार होगा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगी।

विनीता—
आर्या भूरसुन्दरी

---

* श्रीः *

श्री पञ्चपरमेष्ठिने नमः

❀ भूरसुन्दरी ज्ञान प्रकाश *

मङ्गलाचरण



निःसीमभीमभव सम्भव रूढ़गूढ़-
सम्मोहभूय लयदारण सारसीरम् ।
धीरं कुवासमलहारि सुवादि पूर-
मुत्तुङ्ग मार करि केसरिणं नमामि ॥१॥

अर्थ—मैं श्री वीर स्वामी को नमस्कार करती हूँ कि जो (वीर स्वामी) सीमा रहित, भयङ्कर संसार में उत्पन्न हुए अति कठिन सम्मोह रूपी भू-मण्डल का विदारण करने के लिए लोहे के हल के समान हैं, कुवासनाओं के मल को धोने के लिए सुन्दर जल प्रवाह के समान हैं तथा प्रवल कामदेव रूपी हाथी का नाश करने के लिए सिंह के समान हैं ॥ १ ॥

वीर शिरोमणि वीर जिन, धरत तुम्हारो ध्यान।
सकल शान्ति सुख दीजिये, हरिये सकल अज्ञान ॥ २ ॥
प्रबल मोह मम नाशिये, मूल सहित जिनराज।
निजपद भक्ति सु दीजिये, सुधरें सब ही काज ॥ ३ ॥
सौम्य बोध दुति धारिणी, सुरपुर थिन अभिराम।
तिनके चरण सरोज ते, भई सुपूरण काम ॥ ४ ॥
तिन ही के पद कमल में, पुनि पुनि शीस नमाय।
अल्पबुद्धि नर नारि हित, सब विधि मन में लाय ॥ ५ ॥
भूरासुन्दरि ज्ञान परकाश रच्यो यह ग्रन्थ।
पठन किये ते आसु नर, लहि हैं सुख को पन्थ ॥ ६ ॥

भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश

प्रथम परिच्छेद

पञ्च परमेष्ठि नमस्कार।

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन को परम पद पर स्थित होने के कारण परमेष्ठी कहते हैं, इन को नमस्कार करने तथा इनका ध्यान करने से लौकिक और पारलौकिक सब ही सुख प्राप्त होते हैं, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है, इन को नमस्कार करने का मुख्य मन्त्र श्रीनवकार मन्त्र निम्नलिखित है —

नमो अरिहन्ताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं, एसो पंच-णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

इस मन्त्र का संक्षेप में यह अर्थ है कि अर्हन्तों को नमस्कार है, सिद्धों को नमस्कार है, आचार्यों को

नमस्कार है, उपाध्यायों को नमस्कार है तथा लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार है, इन पाँचों को जो यह नमस्कार करता है वह सब पापों का नाश करता है, तथा सब मङ्गलों में प्रथम मङ्गल है ॥ १॥

इस मन्त्र में नौ पद हैं, उन नौओं पदों का भङ्ग संख्या ३६२८८० (तीन लाख बासठ हजार आठ सौ अस्सी) है, इस के गुणन की तीन रीतियां हैं—आनुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी, इनमें से आदि से लेकर अन्त तक क्रम से गुणन को आनुपूर्वी क्रम कहते हैं, अन्त से लेकर आदि तक क्रम से गुणन को पश्चानुपूर्वी क्रम कहते हैं तथा मध्य के सब भङ्गों को अनानुपूर्वी कहते हैं, इन तीनों क्रमों से गुणन का फल महा प्रभावशाली है—इस विषय में श्री जिनकीर्त्ति सूरिजी महाराज ने अपने बनाये हुए श्री पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार स्तोत्र के अन्त में बहुत कुछ कहा है, जिसका आशय यह है कि—आनुपूर्वी आदि भङ्गों को अच्छे प्रकार जानकर जो उन्हें भावपूर्वक प्रतिदिन

गुणता है वह सिद्धि सुखों को प्राप्त होता है, जो पाप पाण्मासिक और वार्षिक तीव्र तप से नष्ट होता है वह (पाप) नमस्कार की आनुपूर्वी के गुणने से आधे क्षण में नष्ट हो जाता है, जो मनुष्य सावधान मन होकर आनुपूर्वी के सब ही भंगों को गुणता है वह अति रुष्ट वैरियों से बाँधा हुआ भी शीघ्र ही मुक्त हो जाता है, इन से अभिमन्त्रित "श्रीवास" से शाकिनी और भूत आदि तथा सर्व ग्रह एक क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, दूसरे भी उपसर्ग, राजा आदि के भय तथा दुष्ट रोग नवपद की आनुपूर्वी के गुणन से शान्त हो जाते हैं, इत्यादि, जिस मन्त्र के नवपदों की आनुपूर्वी आदि के गुणन का इतना बड़ा महत्त्व है उस (मन्त्र) की महिमा का क्या ठिकाना है—इसके विषय में पूर्वाचार्यों का यह कथन है कि:—

नवकार इक अक्खर पावं फेडेइसत्त अयराणं ॥ पन्नासंच पयणं सागर पणसय समग्गेणं ॥ १ ॥

जो गुणइ लक्खमेगंपूएहि विहीहिं जिण नमुक्कारं ॥ तित्थयरनामगो अंसोवंध इतत्थि सन्देहो ॥ २ ॥ अट्ठेव अट्ठसया अट्ठसहस्संच अट्ठकोडीओ ॥ जो गुणइ भत्तिजुत्तो सो पावइ . . . ॥

अर्थात् श्री नवकार मन्त्र का एक अक्षर भी सात सागरोपमों के पापों को नष्ट करता है इसका एक पद पचास सागरोपमों के पापों को नष्ट करता है पर समग्र मन्त्र पांच सौ सागरोपमों के पापों का नाश करता है, जो मनुष्य विधिपूर्वक एक लाख बार जिन नमस्कार को गुणता है वह तीर्थङ्कर नाम गोत्र कर्म को बांधता है, इस में सन्देह नहीं है, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक आठ, आठ सौ, आठ सहस्र तथा आठ करोड़ बार इसका गुणन करता है वह शास्वत स्थान (मोक्ष पद) को प्राप्त करता है।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य जी महाराज ने भी अपने बनाये हुए योगशास्त्र नामक ग्रन्थ के आठवें प्रकाश में इस मन्त्र के महत्त्व का बहुत कुछ वर्णन किया है, जिसका विस्तार के भय से यहाँ पर उल्लेख नहीं किया जाता है।

पूर्वोक्त मन्त्र का तथा उस की आनुपूर्वी आदि का ऐसा महत्त्व होने से सर्व साधारण के लाभ के लिये यहाँ पर उक्त मन्त्र के केवल पाँच पदों की आनुपूर्वी आदि का उल्लेख किया जाता है:—



१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

शिक्षा—देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ तथा दया में धर्म, ये तीन तत्त्व व्यावहारिक हैं।

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

शिक्षा—ज्ञेय आत्मा, गुरु ज्ञान तथा शुद्ध उपयोग में धर्म ये तीनों धर्म के निश्चय तत्त्व हैं।

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	७	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

शिक्षा—सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चरित्र ये तीनों मुक्ति के मार्ग रूप हैं।

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

शिक्षा—धर्म के चार भेद हैं—दान, शील, तप, और भाव।

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

शिक्षा—चित्त देने वाले के भाव रहता है, वित्त वही है जो निर्दोष है, पात्र वही है जो अधिकारी है, दान का फल सुपात्र को ही देने से होता है।

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

शिक्षा—सदाचार के पालन और विषयों से निवृत्ति का नाम शील है।

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

शिक्षा—इच्छा का निरोध (रोकना) और गुणवानों की भक्ति; इसी का नाम तप है।



१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

शिक्षा—क्षमा अमृत है, उद्यम मित्र है, सत्य निर्भयता दायक है तथा सन्तोष सुख है, अत इन का अवश्य सेवन करना चाहिये।

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

शिक्षा—मेरी ही बात सत्य है, इस हठ का त्याग करना चाहिये तथा विश्वासघात कभी नहीं करना



२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

शिक्षा—स्मरण रक्खो कि एक दिन अवश्य मरना है, इसलिये परोपकार को मत भूलो, गुरु के अवगुण का कथन करने वाला तथा उनके उपकार को न मानने वाला कृतघ्न होता है।

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

शिक्षा—इस बात को सत्य मान लो कि जो समय निकल जाता है वह किसी प्रकार से भी हाथ में नहीं आता है, इसलिए जो मनुष्य समय को वृथा गमावेगा वह पीछे अवश्य पछतावेगा।

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

शिक्षा—स्मरण रक्खो कि एक दिन अवश्य मरना है, इसलिये परोपकार को मत भूलो, गुरु के अवगुण का कथन करने वाला तथा उनके उपकार को न मानने वाला कृतघ्न होता है।

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

शिक्षा—इस बात को सत्य मान लो कि जो समय निकल जाता है वह किसी प्रकार से भी हाथ में नहीं आता है, इसलिए जो मनुष्य समय को वृथा गमावेगा वह पीछे अवश्य पछतावेगा।

१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

शिक्षा—ओंकार का ध्यान सदा इङ्गला, पिङ्गला और सुषुमना आदि दशों द्वारों का रोक कर करना चाहिय ।

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

शिक्षा—विचार करो, मूर्ख मत बनो, पाप और पुण्य के स्वरूप को समझो, पाप की निन्दा करो, पापी की नहीं, आत्मा की निन्दा करो किन्तु परमात्मा की निन्दा मत करो।

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

शिक्षा—मूर्ख लोग जुआ, परदारगमन और वेश्या गमन आदि हानिकारक कार्यों में वृथा ही अपव्यय करते हैं, यदि यही द्रव्य धर्म कार्य में व्यय किया जावे तो कितना लाभ हो सकता है।

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

शिक्षा—यह बात बिलकुल सत्य है कि जहाँ धर्म है वहीं विजय है तथा जहाँ पाप है वहाँ क्षय है, इसलिए। निश्चय है कि सत्य व्रतधारी ही संसार सागर से पार होगा

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

शिक्षा—सत्संङ्ग परम लाभदायक है सन्तोष परम धन है, विचार परम ज्ञान है तथा समता परमसुख है।

२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
४	५	२	३	१
५	४	२	३	१

शिक्षा—मनुष्य जन्म, साधु दर्शन, धर्म का श्रवण, सच्ची श्रद्धा तथा धर्म का आचरण ये सब संसार में दुर्लभ हैं।

३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१
			२	१

शिक्षा—जा कर लिया जावे वही काम है, जो भज लिया है सो ही राम है, जो अच्छा काम करना हो उसे अभी कर लो क्योंकि यह समय फिर किसी प्रकार से हाथ में नहीं आवगा।

यह पाँच पदों की आनुपूर्वी आदि का उल्लेख किया गया है, इसके अनुसार जो गुणन करेगा तथा नीचे लिखी शिक्षाओं को सदा हृदय में स्थान देगा वह अवश्य कल्याण का भागी होगा, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है।

* इति प्रथमः परिच्छेदः *

द्वितीय परिच्छेद

१—उपदेश के दोहे:—

ज्ञान लहोरे प्राणियाँ, तासे शिव सुख होय।
ज्ञान बिना नरया पुरा[1], मुक्ति न आवे कोय ॥ १ ॥
श्री जिनराज बखानिया, दशवैकालिक माहिं ॥
प्रथम पढ़ो तुम ज्ञान को, जासे शिव सुख थाय ॥ २ ॥
ज्ञान रूप है मनुज[2] को, और रूप नहिं कोय ॥
ज्ञान बिना नर बापड़ा[3], गया जनम को खोय ॥ ३ ॥
ज्ञान गुप्त[4] धन जगत में, चोर न लूटे कोय ॥
सज्जन सो बांटे नहीं, कबहुँ न रीता[5] होय ॥ ४ ॥
कोस बड़ा है ज्ञान का, इस का नहिं है पार ॥
खरचत ही बाढ़े सदा, सञ्चय[6] लहे विकार ॥ ५ ॥
ज्ञान बिना नर ढोर[7] है, जैसा जंगल रोज ॥
होश नहीं है आपका, कैसे आतम खोज ॥ ६ ॥

---

१ बेचारा। २ मनुष्य। ३ बेचारा। ४ छिपा हुआ। ५ खाली। ६ इकट्ठा करने से। ७ पशु।

ज्ञान बिना निष्फल जनम, श्वान[1] पूँछ जिमि जान ॥
मशक[2] दूर होवे नहीं, वृथा जन्म इम जान ॥ ७ ॥
ज्ञान बिना नर अन्ध[3] है, देखो हृदय विचार ॥
सत्यासत्य विवेक नहिं, कैसे हो भव पार ॥ ८ ॥
भय निद्रा अरु मैथुनहु, पशु नर एक समान ॥
मानुष[4] ज्ञान विशेष है, सब में नर परधान ॥ ९ ॥
ज्ञान बिना आदर नहीं, कोय न माने बोल ॥
ज्ञान बिना नर बापडा, इत उत[5] डामाडोल ॥ १० ॥
नर भव उत्तम पाय कर, दीपक ज्ञान विचार ॥
तीन लोक की सम्पदा, नरभव माहीं धार ॥ ११ ॥
भली बुरी सब वस्तु की, ज्ञान होत पहिचान ॥
अज्ञानी जाने नहीं, कैसो लाभरु हान ॥ १२ ॥
ज्ञान जोति परगट भये, मिटे मृषा[6] अंधकार ॥
अन्तर ज्योति उद्योत[7] हो, तब हो भव के पार ॥ १३ ॥
ज्ञानभानु[8] है जगत में, करत तिमिर[9] को नाश ॥
जब घट जोति प्रकाश हो, होत जगत को भास ॥ १४ ॥

१—कुत्ता । २—मच्छर । ३—अन्धा । ४—मनुष्य में । ५—इधर उधर । ६—मिथ्या । ७—प्रकाशित । ८—सूर्य । ९—अन्धकार ।

ज्ञानी नर जानत अहै, ज्ञानध्यान की बात।
जिमि प्रसून[1] की वन्दना[2], जानत सुत की मात॥ १५॥
ज्ञानि परिश्रम मूर्ख जन, कबहुँ न जानत कोय।
बाँझ तिया जाने नहीं, जनमें वेदन जोय॥ १६॥
न्हाय धोय सज्जित[3] हुआ, चारु[4] मनोहर वेस।
बिना ज्ञान शोभे नहीं, बिना भूप जिमि देस॥ १७॥
तिय नहिं शोभत नर बिना, पुत्र बिना जिमि गेह[5]।
बोध बिना तिमि मनुज को, कैसे पाप नसेह॥ १८॥
नयनं बिना जिमि काजला, शोभत नाहिं लिलार[6]।
बोध बिना तिमि जगतनर, गया जमारा हार॥ १९॥
जगज्ञानी नर सुघड़ है, कर आत्महित काज।
तिहितें आत्महिं शुद्ध करि, पावत सौख्य समाज॥ २०॥
मन वच थिरता धारि के, जो सुख आतम माहिं।
इन्द्र चक्रि अरु हलधरा, तासम सुख है नाहिं॥ २१॥
बालुभीति सम जानिये, यह संसार अनित्य।
गुरु किरपातें होत है, मन जोती[7] आदित्य[8]॥ ॥

1—बालक की उत्पत्ति। 2—पीड़ा। 3—तैयार 4—सुन्दर। 5—घर। 6—ललाट। 7—प्रकाश। 8—सूर्य।

पढ़ने में गुण एक है, अनुभव होत करोड।
इस से मन को रोक कर, ज्ञान विचारो जोड ॥ २३ ॥
अन्तर[1] मेल न जात है, किये वाह्य[2] उपचार[3]।
जैसे धोये बहिर तें, शीशी मेल न जाय ॥ २४ ॥
जो तू चाहे जीव सुख, भोगन तें मन फेर।
जगह जगह भटके मती, निज आतम को हेर ॥ २५ ॥
अनुभव दीपक सामने, जलते कर्म पतङ्ग।
ऐसेहिं ज्ञान समाजतें, मिटत भरम को अंग ॥ २६ ॥
काम क्रोध को वश करी, भोगन तें मन खींच।
जो तू चाहत आत्मसुख, रत[4] हो ज्ञान के बीच ॥ २७ ॥
बिना विचारे ज्ञान के, मत भौंके जिमि स्वान[5]।
मान शत्रु को त्यागि के, निज आतम पहिचान ॥ २८ ॥
कामधेनु ज्ञाना पुरुष, ज्ञानदुग्ध दातार।
पान करत सुख ऊपजे, दोष करत है छार[6] ॥ २९ ॥
बिना विचारे ज्ञान के, किये कष्ट बेपार।
पञ्चाग्नी तप तापिया, मिटी न यम की मार ॥ ३० ॥

१—भीतर का। २—बाहरी। ३—उपाय। ४—तत्पर। ५—कुत्ता। ६—नष्ट।

भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश

पारस के अरु ज्ञान के अन्तर[1] अधिक महान।
वह लोहा कञ्चन[2] करे वह देव निरवान[3] ॥ ३१ ॥

चिन्तमल सम जानिये, ज्ञानतणो भण्डार।
ज्यों निकसे त्यों त्यों वढ़ै कबहुँ न छीजे[4] लिगार[5] ॥ ३२ ॥

अनँत ज्ञान जिनराज को याम मीन न मेख।
ज्यों घन वरसे तरुफलैं[6] ये ही ओपम देख ॥ ३३ ॥

गुरु किरपा तैं पाइये ज्ञान तणो भण्डार।
करो सेव गुरुदेव की हो भव सिन्धु पार ॥ ३४ ॥

जैसे जीव अनन्त हैं तैसे ज्ञान अनन्त।
पार न पावै तासु को, इमि भाखै भगवन्त ॥ ३५ ॥

शास्त्रन पढ़ि पढ़ि जग मरा ज्ञानी भया न कोय।
मन को वश करि ध्यानकर, गुरू बताये तोय ॥ ३६ ॥

ढाई अक्षर नाम के अ उ अर्धमकार।
तीन[7] योग थिर राखि के जपे दूर अजाल ॥ ३७ ॥

१—तक । २—सोना । ३—मोक्ष । ४—घटता है ।
५—जरा भी । ६—हस । ७—मन, वचन काय ।

बिना ज्ञान मिलता नहीं, इसका अगम[1] विचार।
इगला पिंगला सुषुमना, इनका करो विचार ॥ ३८ ॥
अ में अरिहंत वसत हैं, मन माहीं तू देख।
आचारज को वास पुनि, अ में निश्चय पेख[2] ॥ ३९ ॥
उवज्झाय[3] उ में समझ, म में मुनी समाय।
पंच परमेष्ठी वसत हैं, ओंकार के माँय ॥ ४० ॥
जोगी जंगम से बड़ा, सन्यासी दरवेस।
ओंकार सब रटत हैं, यातें मिटत कलेस ॥ ४१ ॥
शुध दरशन[4] हिरदे धरो, सुनो भविक चितलाय।
जहाँ ज्ञान तहँ दर्श[5] है, युगपद ये कहलाय ॥ ४२ ॥
दर्शन बिन निपफल सभी, शास्त्र कहत पुकार।
निश्चय श्रद्धा धारिके, कर्म कटक[6] परजार[7] ॥ ४३ ॥
प्रथम लछन[8] श्रद्धान का, समता है सुज्ञान।
रिपू[9] मित्र सम जानलो, निश्चय करो पिछान ॥ ४४ ॥
राग द्वेष जिनके नहीं, नहि ईरषा[10] परहार[11]।
प्रथम लछन[12] श्रद्धान का, यह उर[13] माहीं धार ॥ ४५ ॥

१—अगम्य, कठिन। २—देख। ३—उपाध्याय। ४—दर्शन। ५—दर्शन। ६—सेना। ७—जलादो। ८—लक्षण। ९—शत्रु। १०—ईर्षा। ११—प्रहार। चोट। १२—लक्षण १३—हृदय।

चितसवेगहु बसत है, श्रद्धावन्त के मॉय।
भोगों से उपरत[१] रहै, विषय वासना[२] नाँय ॥ ४६ ॥
सँकलप मन का दूर कर, कर आतम हित काज।
धारि हृदय वैराग[३] को, पाश्रो सौख्य समाज ॥ ४७ ॥
तीसर लच्छ नि वेग[४] है, त्यागि जगत को साथ।
श्रासबुन्द सम जानिये, क्यों बनता तू नाथ[५] ॥ ४८ ॥
तन धन यौवन विभव पुनि, मिथ्या सब परिवार।
तेरा साथी है नहीं, मातु पिता सुत[६] नार ॥ ४९ ॥
श्रद्धावन्त है सोहिनर, मान करत जो दूर।
काम क्रोध अरु लोभ हू नाशत है जो शूर[७] ॥ ५० ॥
तुय[८] भेद श्रद्धान का अनुकम्पा सुख साज।
साता दो सब जीव को यहा धर्म को काज ॥ ५१ ॥
अनुकम्पा मन में नहीं, फिरता डामाडोल।
जैसे जंगल का पशू, कोइ न पूछे मोल ॥ ५२ ॥

१—निवृत्त। २—विषयों की इच्छा। ३—वैराग्य।
४—निर्वेग। ५—मनोष। ६—पुत्र। ७—शूरवीर। ८—चौथा।

पर दुख को दूरहिं करो, तन मन द्रव्य लगाय।
जो सुख चाहो जीव का, अनुकम्पा मन लाय ॥ ५३ ॥
आस्था लच्छन[1] पाँचवाँ, रखो हृदय के बीच।
वीतराग ने भाखिया[2], हटे कर्म की कीच ॥ ५४ ॥
पाँच लछन दरशनतणा[3], राखो मन के बीच।
ये जिसके घट में नहीं, वही नीच का नीच ॥ ५५ ॥
चार अंग जो धर्म के, दुषकर[4] श्रद्धा जान।
कठिन अंग दर्शन अहै, इमि[5] भाख्यो[6] भगवान ॥ ५६ ॥
ज्ञान दरश को साधलो, निश्चय आतम माँय।
भव भ्रम शीघ्रहि मिटत है, शीघ्र मुक्ति हो जाय ॥ ५७ ॥
शुभ चारित्रहि पाल लो, नशे शीघ्र भव ताप[7]।
सुमती[8] गुपती[9] साध लो, कुमती दूरहिं थाप ॥ ५८ ॥
दयाधर्म को आदरो प्रथम महाव्रत एह।
दूजो मिथ्या परिहरो[10], सिधगतिदायक एह ॥ ५९ ॥
चौर्य कर्म को परिहरो, यह मोटा अपराध।
पाँच अदत्त शास्तर कहे, तजै सर्वथा साध ॥ ६० ॥

१—लक्षण। २—कहा है। ३—दर्शन के। ४—दुष्कर कठिन। ५—इस प्रकार। ६—कहा है। ७—संसार का दुःख। ८—समिति। ९—गुप्ति। १०—छोड़ दो।

ब्रह्मचर्य व्रत है महा, है सबको सरदार।
इसको साधें साधु जन, भोगे यही विकार॥ ६१॥
हरि हलधर से मोटका, ब्रह्मा विष्णु महेश।
मनमथ[1] से सब हारिया, हारे बड़े नरेश॥ ६२॥
साधू हुआ तो क्या भया, दर्प[2] न जीत्या जेह।
बाहरि करनी सब करी, भीतर खेह का खेह॥ ६३॥
साधू नाम धराय के, जिहि के मन महँ मार।
भंग घोट गाँजा पिये वह तो होत खुवार॥ ६४॥
ब्रह्मचारि जहिं बसत है, जहँ तिय[3] आति बसाय।
तहाँ आखु[4] नहिं बसत है, जहाँ रहत बीलाय[5]॥ ६५॥
अंगहीन शत[6] वप का, गूंगा अंधा मार।
जहाँ बसे ब्रह्मचारि तो, बसत न यह निर्धार॥ ६६॥
जल सनान नर करत हैं, बाहर मैल हटाय।
ब्रह्म सरोवर स्नान तें, अन्तर मैल नसाय॥ ६७॥

१—कामदेव। २—अभिमान। ३—स्त्री। ४—चूहा।
५—बिलाव। ६—सौ।

बहुत बार असनान हो, परदारा[1] से नेह[2]।
ते नर जैसा चूहडा, मुक्ति न पावें तेह ॥ ६८ ॥
यहि विधि आनि सुजान नर, राखो शुद्ध अचार।
ब्रह्म ज्ञान में न्हायलो, हो जाओ भव पार ॥ ६९ ॥
साधु परिग्रह सब तजो, यही नरक को मूल[3]।
तृष्णा माया मोटकी, मत राचो[4] तुम भूल ॥ ७० ॥
बाह्य[5] परिग्रह त्याग कर, कहलाते निर्ग्रन्थ।
अन्तर मल त्यागे बिना, रहे निरे सग्रन्थ ॥ ७१ ॥
क्रोध मान त्यागे बिना, किया साधु का रूप।
निज आतम शोधा नहीं, पहुँचे भव जल कूप[6] ॥ ७२ ॥
पञ्च महाव्रत धारलो, मन वच राखो शुद्ध।
काया राखो निरमली, हरो कुमति की बुद्ध ॥ ७३ ॥
पाप मार्ग को परिहरो[7], मोक्ष मार्ग पगधार ॥
निन्दा विकथा परिहरो, आलस दूर निवार ॥ ७४ ॥
ऐसे उत्तम साधु जन, पहुँचें मोक्ष मझार।
भव सागर जलदी तिरैं, जिन वाणी निर्धार ॥ ७५ ॥

१—पर स्त्री। २—स्नेह प्रीति। ३—कारण। ४—फँसो।
५—बाहरी। ६—कुआ। ७—छोड़दो।

मोह वड़ा है राजवी याकी मोटी पौड ।
इन्द्र चन्द्र सब राजिया, बस कीधा[1] सब मौड ॥ ७६ ॥
घात करै यह ज्ञान को, निर्मल केवल ज्ञान ।
अभ्रपटल[2] जिमि होत नहिं, क्यहुँ प्रकटित भान[3] ॥ ७७ ॥
निज आत्मा में ज्ञान है, और नहीं है ठौर ।
कर्म मैल दूरे हटै, प्रकटै जोति अमौर[4] ॥ ७८ ॥
मेरा मेरा करत तू, यह भय बीतो जात ।
सब साथी कोई नहीं, क्यों तू है ललचात ॥ ७९ ॥
मोह कर्म के जाल में, फँसे अज्ञानी ढोर[5] ।
जैसे मृग किसतूरियो, भटकत है चहुँ ओर ॥ ८० ॥
आपहि में सो बसत है, कस्तूरी की गन्ध ।
पर भूलो पावत नहीं ज्ञान विना नर अंध[6] ॥ ८१ ॥
ढूढे से ही मिलत है, निज आपा के माँय ।
जिमि मुक्ता[7] ढूँढे मिलत, गहरे जल के माँय ॥ ८२ ॥

१—किये । २—मेघ की घटा । ३—सूर्य ४—अनुपम ।
५—पशु । ६—अन्धा । ७—मोती ।

मलिन मोह को दूर कर, आतम भूमी माँय।
ज्ञान रतन को ढूँढलो, मुकी सीधा जाय ॥ ८३ ॥
मोह कर्म की सेन[1] को, जो जीते वह शूर।
कायर[2] नर हारत अहै, निपट अहै जो क्रूर ॥ ८४ ॥
तप की तोप बनायले, ज्ञान गोल धर बीच।
मोह फौज भगगायदे, कर्म तोड दे खींच ॥ ८५ ॥
मोह कर्म के बीच में, बैठ्यो चेतन राय।
अपनो आपो भूलियो, मैं तू करता जाय ॥ ८६ ॥
अनुभव ज्ञान भयो नहीं, नहिं पायो गुरु सग।
रीतो[3] रह्यो तू चेतना, चढो न पुन[4] को रंग ॥ ८७ ॥
चेत चेत रे चेतना, अब तो सुरत सँभाल।
अनत काल को भूलियो, अब तू घर में ब्हाल ॥ ८८ ॥
क्षमा बराबर तप नहीं, सब देखा ससार।
ज्ञान बराबर धन नहीं, कह्यो शास्त्र को सार ॥ ८९ ॥
क्षमा करत सो है मनुज[5], शम से पावे सुक्ख।
कोप[6] किये ते बापड़ा[7], भव भव पावे दुक्ख ॥ ९० ॥

१—सेना। २—डरपोक। ३—खाली। ४—पुण्य। ५—मनुष्य। ६—क्रोध। ७—बेचारा।

गुरु वाणी है आकरी[1], तोभी मिसरी टूक ।
विषमतु को सम मानल, सब भागे दिल चूक ॥ ९१ ॥
क्षमा किये बड़ होत है, ऊँचो होय महान।
सब जग में शोभा बढ़ल, जग में होत प्रधान ॥ ९२ ॥
क्षमा भाव मन धार कर, क्रोध करो चकचूर।
निशि[2] दिन तुम सुख में रहो, पाओ मुक्ति जरूर ॥ ९३ ॥
क्रोधहिं प्रीति नसात है, क्रोध होत यश हान[3]।
जहाँ क्रोध तहँ धन नहीं, क्रोध पाप की खान ॥ ९४ ॥
क्रोध किये नरकहिं पड़े, क्रोध से विषधर[4] थाय ।
काल अनन्तामय भ्रमे, कबहुँ न सिद्धी पाय ॥ ९५ ॥
मानदुष्ट अति भयद[5] है, करत नम्रता नाश।
याके वश में जो पड़े, करे नरक में वास ॥ ९६ ॥
तीन खण्ड को राजिया, रावण मोटो राय।
मान तज्यो नहिं ताहिने, पड़्यो नरक के मांय ॥ ९७ ॥
माया सब में है बुरी, करै प्रीति का नाश।
नर को ठगिया वैरिनी, घरे कूप[6] में तास[7] ॥ ९८ ॥

१—तीक्ष्ण, तीखी । २—रात। ३—यश की हानि ।
४सर्प । ५—भय को देने वाला । ६—कुआ । ७—उसको ।

दगा किसी का ना सगा, देखो ज्ञान के साथ।
आप ठगत है और को, ठगे आप ही हाथ ॥ ६६ ॥

पाप पिता है लोभ जग, कह्यो शास्त्र के मांय।
दशमी पैड़ी यह चढ़े, सब गुण देत नशाय ॥१००॥

साधु लक्षन[1] निर्लोभता[2], जो यह राखत चाय।
कबहूँ नीचा ना पड़े, लोभ जु जड़ से जाय ॥१०१॥

इसक साधे सब सधैं, गुण सब ही है जायँ।
जो जीतत है लोभ को, अक्षय[3] पद को पाय ॥१०२॥

योग मार्ग को साध कर, मन में राखे लोभ।
मोक्ष धाम पावे नहीं, होत नहीं जग शोभ ॥१०३॥

चम्पा जी मोटी[4] सती, बहुत गुणन की खान।
उन की शिष्या अनुचरी[5], भूरसुन्दरी जान ॥१०४॥

पिंगल छन्द जानत नहीं, अलंकार नहिं जान।
बुधजन[6] दोष सुधार लें, त्रुटी न देवें ध्यान ॥१०५॥

१—लक्षण। २—लोभ का त्याग। ३—अविनाशी।
४—बड़ी। ५—दासी। ६ पण्डित लोग।

२—बोधदायिनी शिक्षायें

१—राग और द्वेष ये दोनों कर्मों के उपादान हैं।

२—मन, वचन और शरीर, इन तीनों योगों को वश में करो, क्योंकि इन्हीं को वश में करने से जीव मुक्ति में जाता है।

३—मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—पहिले वे जो कि कहते नहीं हैं परन्तु विशेष कार्य को करते हैं दूसरे वे जो कि कहते बहुत हैं परन्तु काय कुछ भी नहीं कर दिखलाते हैं, तीसरे वे जो कि बहुत बोलते हैं तथा काय भी बहुत करते हैं तथा चौथे वे हैं जो कि न तो बहुत बोलते हैं और न कार्य ही करते हैं।

४—उक्त कथन के अनुसार मेघ भी चार प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो कि गरजते नहीं हैं और बरसते हैं, दूसरे वे जो कि गरजते बहुत हैं परन्तु बरसते नहीं हैं तीसरे वे जो कि गरजते भी बहुत हैं तथा बरसते भी बहुत हैं तथा चौथे वे जो कि न तो गरजते हैं और न बरसते हैं।

५—पुष्प भी चार प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो कि सुगन्धित भी होते हैं तथा रसदार भी होते हैं, दूसरे वे जो कि सुगन्धित तो होते हैं परन्तु रसदार नहीं होते हैं, तीसरे वे जो कि रसदार तो होते हैं परन्तु सुगन्धित नहीं होते हैं तथा चौथे वे जो कि न तो रसदार होते हैं और न सुगन्धित ही होते हैं।

६—पुनः मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो कि अंगूर के समान बाहर और भीतर से एक जैसे होते हैं, दूसरे वे जो कि बादाम के समान ऊपर से कड़े और भीतर से रसदायक होते हैं, तीसरे वे जो कि छुहारे के समान ऊपर से मधुर और भीतर से कड़े होते हैं तथा चौथे वे जो कि सुपारी के समान भीतर और बाहिर कठिन होते हैं तथा मधुर भी नहीं होते हैं।

७—पुनः मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो कि अमृत के घड़े और अमृत के ही ढकने के समान बाहर और भीतर से एक से होते हैं, दूसरे वे जो कि अमृत के घड़े और विष के ढकने के समान भीतर से अच्छे होते हैं, बाहर से नहीं, तीसरे वे जो कि विष के घड़े

अमृत के ढकने के समान ऊपर से अच्छे और भीतर से खराब होते हैं तथा चौथे वे जो कि विष के घड़े और विष के ही ढकने के समान बाहर और भीतर से निकृष्ट होते हैं। तात्पर्य यह है कि पहिले प्रकार के पुरुष हृदय के भी साफ होते हैं तथा मुँह के भी मीठे होते हैं, दूसरे प्रकार के पुरुष हृदय के साफ होते हैं परन्तु मुँह के कड़ु होते हैं, तीसरे प्रकार के पुरुष मुँह के तो मीठे होते हैं परन्तु हृदय के पापी होते हैं तथा चौथे प्रकार के पुरुष हृदय के भी पापी होते हैं तथा मुँह के भी पापी होते हैं।

८—स्त्री के पास पुरुष बावला होता है, बालक को खिलाने वाला मनुष्य बावला होता है। दर्पण में निरन्तर मुख को देखने वाला मनुष्य बावला होता है।

९—कहते हैं कि विवाह में स्त्री बावली होती है।

१०—जन्म से ही मित्र माता और पिता होते हैं, घर में धन और स्त्री मित्र हैं, शरीर का मित्र अन्न और जल है, रोगी का मित्र औषधि है, युद्ध में मित्र शरीर का पुरुषार्थ है, सब सुखों का मित्र विद्या है तथा अन्त समय का मित्र अहिंसाधर्म है।

११—बहुत कम बोलना, काम पड़े पर बोलना, हँस कर न बोलना, बात करते समय दो पुरुषों के बीच में न बोलना, मर्मभेदी वचन न बोलना, कटु वचन न बोलना, भोजन और भजन करते समय न बोलना, शौच के समय न बोलना, परनिन्दा सूचक वचन न बोलना किन्तु शास्त्र के अनुकूल मधुर, प्रिय, सत्य, तथा हितकारी वचन बोलना, ये वाणी के गुण हैं।

१२—सर्व जीवों को सुख देने वाला दानी है, पाप से बचने वाला पण्डित है, कुलक्षणों को छोड़ने वाला चतुर है, धर्म में बुद्धि को रखने वाला ज्ञानी है, इन्द्रियों को वश में करने वाला शूरवीर है।

१३—जो परोपकार करता है वह पूरा है, जो पराई चुगली करता है वह अधूरा है, जो सत्य भाषण करता है वह शूरवीर है, जो गरीबों का पालन करता है वह धनवान् है तथा जो गरीबों से छीनता है वह दरिद्री है।

१४—राजा, माता, पिता, धनवान, ज्ञानी, मूर्ख, साधु, बालक, स्त्री, नीच, बलवान, पण्डित तथा अपने से अधिक बलवान् इन से कभी विवाद नहीं करना

१५—रास्ते में गमन समय खाना, बात करते समय हँसना, गई हुई वस्तु का या बिगड़े हुए कार्य का सोच करना, भविष्यत के लिए नवीन २ आशाओं का बांधना, दो मनुष्यों के बीच में आकर खड़ा होना या बैठना खड़े २ पेशाब करना, सोते ७ खाना, स्त्री से गुप्त भेद कहना, तथा स्त्री के कथन के अनुसार चलना, ये सब मूर्खता के लक्षण हैं अर्थात् इन कार्यों से मनुष्य मूर्ख कहलाता है।

१६—पाप का पिता लोभ है उस की माता हिंसा है उसका भाई झूठ है उस की बहिन कुमति है तथा उस की स्त्री माया है।

१७—धर्म का पिता सतोष है, उस की माता दया है उस का भाई सत्य है, उस की बहिन सुमति है तथा उस की स्त्री सत्संगति है।

१८—प्यास में जल मीठा है, शीत ऋतु में वस्त्र मीठा है, बिना देखी बात मीठी है तथा अपना गरज़ सब से मीठी है।

१९—ससार म कडुआ कौन है? जो बिना बुलाये आता है, कण्ठ के बिना गीत कडुआ है, कर्कसा नारी के

साथ में गृहवास कड़ुआ है, विना अवसर की हँसी कड़ुई है, दुर्जन का वचन कड़ुआ है, वहरे के आगे रस-कथा कड़ुई है, अन्धे के आगे शृंगार कड़ुआ है तथा मूर्खों के आगे ज्ञान कथा कड़ुई है।

२०—जो दूसरे के घर माँगने जाता है वह तिनके से भी तुच्छ है।

२१—सुपुत्र सोने से भी अधिक प्यारा और मूल्य-वान् है।

२२—यश दूध से भी उजला होता है तथा कलङ्क काजल से भी अधिक काला है।

२३—सूर्य से भी अधिक तेज वाला नेत्र है तथा क्रोध अग्नि से भी अधिक जलाने वाला है।

२४—कृपण मनुष्य लोहे से भी अधिक कठिन है क्योंकि लोहा तो ताप से नरम हो जाता है परन्तु कृपण मनुष्य परिताप से कदापि नरम नहीं होता है।

२५—धनमद, रूपमद, राजमद तथा
सब मदिरा से भी अधिक मादक होते हैं।

२६—साधु को उचित है कि तपस्या रूपी उबटन से शरीर को शुद्ध करे, उस उबटन में उपशम रूपी मसाला डाल, उसे ज्ञान रूपी जल से भिगोवे, उसमें शील रूपी सुगन्धि को डाल, ध्यान रूपी लेपन करे।

२७—मनुष्य को उचित है कि भगवान् की आज्ञारूपी मुकुट को धारण करे, प्रभु के वचन रूपी कुण्डल को कान में पहने, दया रूपी हार को हृदय में धारण करे, शम, दम, सत्य, सन्तोष और आर्जव रूपी आभूषणों को अंगमें पहन, मनरूपी घोड़े पर सवारी करे, विवेक रूपी लगाम को पकड़े रहे, क्षमा रूपी खड्ग को सँभाले रहे, धीरज रूपी ढाल को हाथ में रक्खे, कर्म रूपी शत्रु को हटावे तथा शिवरमणी से प्रेम करे तो यह चौरासी में भ्रमण से बच जायगा।

२८—गृहस्थ का धर्म यह है कि वह सदा शीलवान् और सदाचारी बने सदा सत्य भाषण करे, विद्या का अभ्यास कर विद्वान् बने, अल्प और सात्विक आहार करे, उदारचित्त बने, तेजस्वी हो, प्रतिज्ञा का पालन करे, विश्वास देकर दगा न करे, सब जीवों पर दया का पालन

करे, ब्रह्मज्ञान का अभ्यासी बने, तीनों समयों में प्रभु का ध्यान करे सर्वदा कुल की लज्जा रक्खे, गम्भीर बने, किसी के दोष को प्रकट न करे, शूरवीर बने, दान देने में सर्वदा उच्च विचार रक्खे, परोपकार में तत्पर रहे, किसी की निन्दा न करे, देव, गुरु, माता और पिता की तन, मन से सेवा करे, इस लोक और परलोक का भय रक्खे, लोक में निन्दा हो ऐसा कार्य न करे, दीन को न सतावे, बड़ों की मर्यादा को न तोड़े, शत्रु से सम्बन्ध खूब विचार कर करे, निन्दक और मुखर मनुष्य से मन के रहस्य को प्रकट न करे, पर स्त्री से वा पर पुरुष से एकान्त में खड़े रह कर बात न करे, बड़ों की शिक्षा को माने, विश्वास घाती का सग न करे, प्राणान्त कष्ट पड़ने पर भी ब्रह्मचर्य व्रत से न हटे, नीच का कदापि सग न करे, बड़े पुरुषों से सर्वदा प्रीति करे, जुआरा, मासभक्षी, मद्यपानकर्त्ता, वेश्यागामी, जीवहिंसाकर्त्ता, चोर तथा परस्त्रीगामी, इनका सग कभी न करे, बड़ों से भूल होने पर भी उनके दोष को सभा में प्रकट न करे और न उनका मान भग करे, अपनी प्रशसा स्वय न करे, सासारिक अनेक विघ्नों के होने पर भी धर्मसाधन का त्याग न करे, नीच मनुष्य

न छेड़े क्योंकि उसके छेड़ने से अपनी लघुता होती है, क्रोधी पुरुष को न छेड़े, अपने घर के सुख दुःख या भेद को दूसरे से न कहे, क्योंकि कहने से अपना हल्कापन होता है, क्रोध आने पर विचार के बोले, जबान में ज्ञान की लगाम रक्खे, बड़े के साथ विवाद और हठ को न करे तथा सांसारिक अनेक झगड़ों के होने पर भी दो घड़ी प्रभु का ध्यान अवश्य करे।

२९—केवल सत्य की जय होती है, झूठ की कभी नहीं होती, सत्य की सहायता से ऋषिगण देवयान मार्ग से परमात्मा के परमधाम को पहुँचते हैं। (उपनिषद्)

३०—कल्याणकारी कर्म करने वाले की न इस लोक में दुर्गति होती है और न परलोक में। (श्रीमद्भगवद्गीता)

३१—जैसा परम ज्ञान महापुरुषों के चरण सेवन से मिलता है वैसा वैदिक कर्म, दान, गृहस्थधर्म पालन, वेदाध्ययन, जल, अग्नि या सूर्य की उपासना आदि कर्मों से कभी नहीं मिल सकता। (भागवत)

३२—क्रोध, दुष्कर्म, कृपणता तथा असत्य को जीतने के शस्त्र क्रम से क्षमा, सुकर्म, उदारता और सत्य हैं। (महाभारत)

३३—मूर्ख कौन है ? जो बकवाद करता है। मूर्ख को चाहिये कि सभा में मुँह न खोले और बुद्धिमान् केवल प्रश्न का उत्तर देने के लिए ही बोले। बहुत सुनना और थोड़ा बोलना ही बुद्धिमान् का लक्षण है। (बुजरचिमिहर)

३४—जो ज्ञान की बड़ी २ बातें बनाते हैं पर जिनके हृदय में दया नहीं है, वे जरूर नरक में जावेंगे। (कबीर)

३५—वे मनुष्य धन्य हैं जो दयाशील हैं, क्योंकि परम पिता की अपनी दया के वे ही भागी हैं। (ईसा)

३६—शूरवीर वे ही हैं जिनका हृदय भगवान् की भक्ति से भरपूर है। (नानक)

३७—जो दूसरे के अवगुण की चर्चा करता है वह अपना अवगुण प्रकट करता है। (बुद्ध)

३८—मनुष्य को चाहिये कि अपना मित्र आप ही बने, बाहरी मित्र की खोज में न भटके। (जैन सूत्र)

३९—जो सच्चे हृदय के साधु हैं वे मन को पीस कर चाले हुए मैदे की भाँति कर देते हैं, जिसमें मान या गर्व की किरकिरी नहीं होती। (पारसभाग)

४०—भला वह है जो अपने मन को पृथिवी के समान सहिष्णु और परोपकारी बनाले, जिसमें लोग खाद डालते हैं, परन्तु वह अन्न ही देता है। (जगजीवन साहब)

४१—जिस बात से समाज को सुख पहुँचे, उसमें यदि तुम्हें कुछ दुःख भी पहुँचे तो नाराज मत हो। (मारकस आरोलियस)

४२—जो मूर्ख अपनी मूर्खता को जानता है वह धीरे २ सीख सकता है, परन्तु जो मूर्ख अपने को बुद्धिमान् समझता है उसका रोग असाध्य है। (अफलातून)

४३—जो बाहर से बहुत सुन्दर है पर जिसका मन मैला है, उससे तो कौआ अच्छा है जो बाहर भीतर एक रंग है। (दरिया साहब)

४४—संसार में तीन बातें बड़ी उपकार करने वाली हैं परन्तु धारण करने में कठिन हैं—निर्धनता में उदारता, एकान्त में इन्द्रिय निग्रह और भय में सत्य। (अज्ञात)

४५—अच्छे गुणों को सीखने में तुम्हारी यह धारणा होना चाहिये कि तुम्हारा अभिप्राय अपने सुधार का है, न कि लोक में बड़ाई पाने का। (चीनी महात्मा)

३—पहेलियां ।

कनज पलट[1] ताकी सुता[2] ता पति[3] के पितु[4] जोय ।
अरध नाम[5] ताको अमर, करना मुशकिल होय ॥ १ ॥
आदि अक्षर बिन जगको ज्यावे, मध्य अक्षर बिन जग सहारे ।
अन्त्य अक्षर बिन लागत माठा, वह सबके मैं नयनों दीठा[6] ।२।
गुरु जी तुम्हरे दरश की, बार बार मोहिं चाह ।
अस्व वर्ण[7] अरु मीन घर[8], मिलन देत है नाय ॥ ३ ॥
सोना को ठोलयो[9] रूपे की ईस[10], दो जन बैठें करें जगीस ।
चावत बीडी थूकत पान, दोय जनों के बाईस कान ॥ ४ ॥
आद दह अन्त दह रह मध्य अरु माय ।
तुम दर्शन बिन होत है तुम दर्शन से जाय[11] ॥ ५ ॥
कवर्ग का ये आद है पवर्ग अक्षर अन्त[12] ।
ये जाते ते शूरमा मुक्ति पावै तुरन्त ॥ ६ ॥
राधापती के कर बसे[13] पञ्च अक्षर से सुजान ।
प्रथम अक्षर दूर करि बचे सो मुझ को आप[14] ॥ ७ ॥

१—जनक । २—सीता । ३—राम । ४—जसरथ । ५—जस ।
६—काजल । ७—दान । ८—पानी । ९—रावण ।
११—दर्द । १२—काम । १३—सुदर्शन । १४—दर्शन ।

वह अपने सुख के सामने स्वर्ग के सुख को तुच्छ समझती थी। केवल पति के चर कमल के दर्शन मात्र से ही सीता अपने को परम सुखी जानती थी। यही कारण है कि सीता उस विकट वन को सुन्दर महल समझती थी, रास्ते में पड़े हुए कांटों को पुष्प शय्या समझती थी। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गए तब रामचन्द्रजी ने दण्डक वन में प्रवेश किया। उसी समय दुराचारी रावण ने छल से सीता का हरण कर लिया। सीता को लंका में लाकर अपनी घृणित कामना को पूर्ण करना चाहता था। सीता को राजी करने की विविध चेष्टा करने पर भी उनका सुमेरु समान मन कुछ भी नहीं चला। देखो आश्चर्य की बात तो यह है कि उस समय सीता का सहायक भी कोई न था। सीता के प्राणनाथ हजारों कोस दूर थे ऐसे कुसमय में सीता को अति भय बताया गया, घोर वेदना से सीता के विचार को बदलने की चेष्टा की गई, मगर सीता ने अपने हृदय को पाषाणवत् बनाकर सब कष्टों को सहन किया। सीता का पातिव्रत धर्म पूर्ण था। इतना कष्ट सहने पर भी शील रूपी आभूषण को काठ नहीं लगाया। ऐसी महा सती को भी लोगों ने कलंकित किया तो अपने शील के

प्रभाव से अग्निकुंड को शीतल चन्दन समान जल बनाया। देखो यह कथा तो बहुत बड़ी है परन्तु इस बात के ऊपर ध्यान देना चाहिये सब स्त्री समाज को भी ध्यान देना चाहिये कि सीता सती की तरह सबको अपने शील की रक्षा करनी चाहिये। फिर देखो और भी सतियों का बयान है कि यदुवंशियों में राजा उग्रसैन की पुत्री राजमतीजी की सगाई बाईसवें तीर्थंकर नेम प्रभु से हुई। जब नेमनाथ भगवान् व्याहने को आए तब उग्रसैन राजा ने पशुओं का बाड़ा भरवाया। नेमप्रभु तोरण पर जाने लगे सब पशु कुरलाए। अपनी २ भाषा में अर्ज गुजारी सब उनकी पुकार सुनकर तोरण से रथ फेर कर गिरनार पर्वत पर जाकर संयम अंगीकार किया। इधर महलों में स्थित राजल देवी को यह ज्ञात हुआ कि नेमनाथजी ने वैराग धारण कर लिया। इसने राजल के हृदय रूपी कमल को दग्ध कर दिया। कहां तो वह परम हर्ष कहां यह विपत्ति का पहाड़। सारे राज महल में खलबली मच गई, राजल सती मूर्छा को प्राप्त होगई। 'हे नाथ' 'हे नाथ' ऐसा उच्चारण करते हुए रुदन करने लगी। सर्व कुटुम्बियों ने सब सखियों ने समझाई मगर उस सती ने

किसी की भी नहीं सुनी। एक नेम स्वामी के बिना सारा संसार शून्य दीखने लगा। वह क्षण भर भी यहां न ठहरी समस्त भूषण उतार कर वैराग्य में उद्यम करने लगी। सब सज्जन ध्यानपूर्वक सुनो। राजल दर्यी के सतीत्व को देख कर सुन कर सब स्त्री समाज को य ही आचरण अंगीकार करना चाहिये जैसा राजमती ने अपने शील रूपी आभूषण को धारण किया ऐसे ही सर्व स्त्रियों को शील अंगीकार करना चाहिये। इनको कहां तक सतीयों का बयान करें। फिर इनको सती राणी चेलणा कैसा हुए हैं। अनुमान २५०० वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका है वैसाला पुर में सती चेलणा का जन्म हुआ था उन के पिता का नाम राजा चैटक था। माता का नाम सुभद्रा था। ये चेलणा राजा श्रेणिक को व्याहा गई थीं। इसी शुभ संयोग से जैन धर्म को सारे भूमंडल में विजय वैजयन्ता उड़ान वाले अन्तिम तीर्थकर श्री महावीर स्वामी का जन्म हुआ था। राजा श्रेणिक की राणी चेला को बाल्यावस्था से उत्तमोत्तम शिक्षाएं दी गई थीं जिन से सत्य जैन धर्म का मर्म अच्छी तरह समझ लिया था। मगर इन का पति राजा श्रेणिक बौद्धधर्मी था इसलिए पति और पत्नी को

अपने अपने धर्म की प्रशंसा करते हुए एक दूसरे को अपने धर्म में लाने की प्रेम पूर्वक इच्छा थी। राजा रानी का धर्म में बहुत कुछ वाद विवाद हुआ करता था। मगर अन्त में रानी ने राजा को सत्य धर्म में लाकर धर्म में स्थिर कर दिया। चेडा महाराज की सात ही पुत्री माही धर्म में पूर्ण प्रेम वाली थी। माहा मोटी सती थी। महावीर भगवान ने उनकी तारीफ करी। देखो स्त्रियों में ऐसा रत्न पैदा हुई कि तीन लोक के नाथ ने जिन की प्रशंसा करी। देखो शास्त्र शाखी है, हे मेरी बहनो ! तुम भी सुन कर या पढ़ कर अपना आचरण सुधारो। वृथा जन्म मत खोओ। फिर और भी देखो पवनकुमार की स्त्री अंजना को बारह वर्ष तक पति का वियोग रहा फिर संयोग होने के पश्चात् हनुमान जी गर्भ में आए तब सासु ने कलंक चढ़ा कर पीहर निकाल दी। पीहर वाले भाई भायत और माता पिता किसी ने भी उन का सत्कार नहीं किया। फिर वन में प्रवेश किया उनके सत्य शील के प्रभाव से देवताओं ने सहायता करी। वन में ही पुत्र पैदा हुआ महान कष्ट उठाया मगर अपने सत्य धर्म के ऊपर कायम रहीं।

धन्य है ऐसी वीर स्त्रियों को ऐसी मुसीबत में भी अपने धर्म पर शूर वीरता रखा। इस ही बात पर सब स्त्रियों को ध्यान देना चाहिये और भी सुनो—

ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दन बाला, दमयन्ती, कमलावती, सुलोचना, तारा, कौशिल्या, कुन्ता, द्रौपदी, पद्मावती, मलयासुंदरी, नागला ऐसा ऐसा सहस्रों सती हुई हैं, बड़े बड़े कष्ट उठाय मर्णान्तिक कष्ट सहन किया मगर अपने सत धर्म से नहीं डिगीं। जो स्त्री सनातन धर्म में सावधान रहती है उसही का जन्म सफल है

देखो पाणिनि ऋषि ने भी य कहा है कि 'सूया न पश्यति राजदारा' चन्द्रमा सूर्य भी नहीं देखने पाती हैं। इसका भी सती को नहीं देखना चाहिये। ऐसा व्याकरण वाले कहते हैं, पराये पुरुष का रूप देखना, हँसी दिल्लगी करना उसके साथ कुत्सित शब्द का उच्चारण करना, बुरा बुरी गालिया बकना पराये, पुरुष के साथ होली खेलना फिर भी जो ऐसा आचरण करता हुई अपने को सतीपणा मानती है, धिक्कार है उस स्त्री को जो पती की आज्ञा में न रहकर स्वच्छाचारी होती है वो स्त्री हमेशा दुर्गति को जाने

वाली होगी, शास्त्रकार भी कहता है कि—लोक लज्जा से तो शील पालती हैं वो भी स्त्री स्वर्ग लोक की अधिकारी होती है। जो मन, वाणी, काय श्रोकरण तीन योग से जो सतीत्व धर्म का पालन करती है वो तो मोक्ष की अधिकारिणी हो सकती है, इसलिए स्त्रियों को अपना सदाचार आचरण शुद्ध करना चाहिये देखो कुछ अन्य मत का भी कथन किया जाता है कि विद्या के विषय में अन्य मतावलम्बियों में भी कैसी कैसी विद्वान् शूर वीर स्त्रियां होगई हैं इनका भी कुछ वर्णन करते हैं—

जैसा कि अन्य सिद्धान्त में भी बहुत वीर स्त्रियों का वर्णन करते हैं। अब कुछ अन्य मत की स्त्रियों का वर्णन किया जाता है।

ये मानी हुई बात है कि प्रत्येक देश प्रत्येक जाति प्रत्येक समाज प्रत्येक व्यक्ति का सुधार सत्-शिक्षा और सद्विद्या के द्वारा प्राप्त हुए कर्त्तव्य के विवेक[1] और उस के पालन के द्वारा होता है, बस समझ लेना चाहिये कि गृहस्थाश्रम का सुधार भी इस आश्रम के

१—ज्ञान।

मूल भूत[1] स्त्री पुरुषों के सत् शिक्षा और सद्विद्या के द्वारा प्राप्त हुए कर्तव्य के विवेक और उस के पालन के द्वारा ही हो सक्ता है। सत् शिक्षा और सद्विद्या की प्राप्ति का साधन[2] गुरु के द्वारा उस का अभ्यास करना है। अतएव पूर्व काल में साधारणतया[3] द्विजातियों में यह प्रथा[4] प्रचलित[5] थी कि विद्याभ्यास के योग्य अवस्था होने पर बालक और बालिकायें विद्याभ्यास करने के लिए गुरुकुल में भेज दिये जाते थे, और वहां वे ब्रह्मचर्य के नियमों का ठीक रीति से पालन कर विद्या का अभ्यास करते थे, और उस की समाप्ति होनेपर निज कुल[6] में आते थे। और उसी योग्य अवस्था में शिक्षासम्पन्न[7] विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री का निज जाति में विवाह, सत्कार होता था। बस, पूर्व समय में ऐसे सुयोग्य दम्पती[8] परस्पर में स्नेह भाव को धारण कर तथा अपने २ कर्तव्य का पालन कर अपने गृहस्थाश्रम को व्यतीत करते थे तथा दाम्पत्य स्नेह[9] से उन का यह आश्रम उन के लिए

१—कारणरूप। २—कारण। ३—मामूली तौर से। ४—रिवाज। ५—जारी। ६—अपने। ७—शिक्षा से युक्त। ८—स्त्री पुरुष। ९—स्त्री पुरुष का प्रेम।

स्वर्ग तुल्य सुखदायक होता था, सन्तान उत्पन्न होकर उस के योग्य बन जाने पर वे दोनों स्त्री पुरुष वानप्रस्थ आश्रम के धर्म का पालन कर और अन्त में संन्यास धर्म का पालन कर आत्मकल्याण के भागी होते थे, खेद के साथ कहना पड़ता है कि आज वह प्रथा[1] लुप्त प्रायसी होगई है, गुरुकुल में जाकर विद्या का अभ्यास करना तो दूर रहा निजकुल में ही रह कर स्त्री पुरुष का यथार्थतया[2] विद्याभ्यास नहीं होता है और उस में भी स्त्रियों का तो विद्याभ्यास इस प्रकार नाममात्र का रह गया है जो कि नहीं के समान है। अनेक साधनों के प्रस्तुत[3] होने से पुरुषों का तो फिर भी कहीं २ कुछ २ विद्याभ्यास हो भी जाता है परन्तु वेचारी स्त्रियां पूर्व संस्कार वश विद्याभ्यास की इच्छा होने पर भी मुँह ताकती ही रह जाती हैं, निश्चय जान लीजिये कि पुरुष के विद्वान् होने पर भी स्त्री के मूर्खा होने से गृहस्थाश्रम का सच्चा सुख कदापि नहीं मिल सकता है, क्योंकि गृहस्थाश्रम के सुख का

१—रिवाज। २—ठीक रीति से। ३—मौजूद।

भूमि में जाने वाले एवं कर्त्तव्य का त्याग करने वाले अपने पुत्र को जो सदुपदेश देकर उसे कर्त्तव्यनिष्ठ[1] बनाया था, क्या वह विद्या के बिना कभी हो सकता था ?

अल्पवयस्क[2] बालक हकीकतराय की परम विदुषी माता ने यदि सद्विज्ञान वाले अपने पूर्वोक्त बालक के अन्तःकरण को परमपवित्र और कर्त्तव्यनिष्ठ न बनाया होता तो क्या वह अल्पवयस्क बालक निज धर्म की रक्षा के लिए कभी अपने प्राणों का बलिदान कर सकता था ?

यदि सद्विद्यासम्पन्न न होती तो क्या अहल्याबाई पतिदेव के स्वर्गधाम पधारने पर सम्यक्तया[3] राज्य कार्य का निर्वाह कर सकती थी तथा आत्मरक्षा और अन्यायी को दण्ड देने के लिए पाँच सौ दासियों को साथ लेकर संग्राम भूमि में उपस्थित होकर अपने विपक्षी[4] गङ्गाधर राव का तिरस्कार कर सकती थी ? यदि सद्विद्या और सद्विज्ञान सम्पन्न न होती तो क्या झाँसी की महारानी

१—कर्त्तव्य में तत्पर। २—छोटी अवस्था के। ३—अच्छे प्रकार से। ४—शत्रु

दुर्गादेवी साक्षात् दुर्गा का रूप धारण कर समराङ्गण[1] में जाकर शत्रु का परिहार[2] कर आत्मरक्षा कर सकती थी। यदि सद्विद्या के प्रभाव से सम्पन्न न होती तो क्या महारानी गान्धारी अपने पतिदेव से अधिक न बढ़ने के उद्देश्य से अपने प्रकाश विशिष्ट[3] नेत्रों के होने पर भी पट्टी बांध कर उन्हें दृष्टिविहीन[4] बना सकती थी?

यदि पूर्ण विद्या और विज्ञान से सम्पन्न न होती तो क्या विदुषी लीलावती अपने ही नाम से "लीलावती" नामक परम क्लिष्ट[5] गणित ग्रन्थ की रचना कर सकती थी? कि जिसके आशय[6] को समझने में वर्त्तमान में बड़े बड़े विद्वानों का भी मस्तिष्क[7] चक्कर खाता है। यदि सर्व शास्त्र निष्णाता[8] न होती तो क्या मण्डन मिश्र की स्त्री उभय भारती शङ्कराचार्य जैसे धुरन्धर विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ कर तथा उनका पराभव[9] कर अपने पतिदेव को संन्यासी होने से बचा सकती थी?

१—लड़ाई का मैदान। २—तिरस्कार। ३—प्रकाश वाले। ४—दृष्टि से रहित। ५—कठिन। ६—मतलब। ७—दिमाग़। ८—सब शास्त्रों में [illegible]। ९—तिरस्कार।

श्रीरामचन्द्रजी के वन जाने के समय जब साथ चलने के लिए सीताजी ने अनुरोध किया तब श्रीरामचन्द्रजी ने अनेक भयों को दिखला कर तथा अनेक हेतुओं का वर्णन कर उन्हें साथ ले जाने के लिए मना किया, परन्तु सीता ने अपनी बुद्धिमानी से उनके सब हेतुओं का खण्डन किया और अपने धर्म को प्रदर्शित कर[1] बहुत ही अनुरोध किया, निदान[2] श्रीरामचन्द्रजी को उनका अनुरोध मानना ही पड़ा यह सब विद्या की ही महिमा थी।

शीलवती सावित्री देवी ने अपने विद्याकौशल[3] से यमराज को अपने वचनों से पराजित कर[4] अपने पतिदेव को यमसदन से वापिस लौटा लिया था। विदुषी गान्धारी अपने पुत्रों से सदा यही कहा करती थी कि "यतो धर्मस्ततो जय"[5]॥ यह विद्या की ही महिमा थी।

विद्यावती और शीलवती एवं धर्म के तत्त्व को समझने वाली कुन्ती ने धर्म का विचार कर ब्राह्मण कुटुम्ब की

१—दिखला कर २—आखिरकार। ३—विद्या की चतुराई। ४—हराकर। ५— जहाँ धर्म है वहीं विजय है।

रक्षा के लिए अपने पुत्र का मोह न कर उसे एकाकी[1] राक्षस के मारने के लिए भेज दिया था।

श्रीमती अनसूया देवी ने वन में सीताजी के मिलने पर उन्हें पातिव्रत धर्म आदि अनेक विषयों की कैसी उत्तम शिक्षा दी थी, यह सब विद्या का ही प्रताप था।

श्री राजा जनक के गार्गी और मैत्रेयी नामक दो भार्यायें थीं, उनमें से मैत्रेयी ने अपने पति से ही ब्रह्म-विद्या को प्राप्त किया था, और उसमें परम प्रवीण[2] थी। कहाँ तक कहें ऐसे सहस्रश[3] उदाहरण हैं जो कि पूर्व काल में स्त्रियों के सद्विद्या के उपार्जन[4] को सिद्ध करते हैं।

एक भोजप्रबन्ध के ही देखने से पता चलता है कि महाराज भोज की सभा में आकर अनेक विदुषी स्त्रियों ने ऐसे २ उत्तम श्लोक रचकर महाराज भोज को सुनाये थे कि जिन्हें सुनकर महाराजा भोज और उनकी सभा के बड़े २ विद्वानों को भी विस्मित[5] होना पड़ा था।

यह सद्विद्या का ही प्रभाव था कि पूर्व में सहस्रश:[6] विदुषी स्त्रियों ने "धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत्

१—अकेला। २—बहुत चतुर। ३—हजारों। ४—प्राप्ति। ५—अचरभे में। ६—हजारों।

काल परखिये चारी ॥" इस वाक्य का अनुसरण कर घोरतम[1] विपत्ति काल में भी सर्व कष्टों को सहन कर के भी अपने पति देव की रक्षा कर अपने कर्त्तव्य का पालन किया था।

विचार कर देखा जावे तो गृहस्थाश्रम में स्त्री ही सर्व स्वरूप होती है, इसीलिए स्त्री के बिना गृह को जंगल के समान कहा गया है।

यदि गृहस्थाश्रम में स्त्री और पुरुष दोनों विद्वान् शिक्षासम्पन्न[2], दाम्पत्य स्नेह[3] से विशिष्ट और एक दूसरे से सन्तुष्ट हों तो उस गृहस्थाश्रम का सुख स्वर्गीय सुख की उपमा[4] का अधिकारी हो सकता है। श्री मनुजी ने सत्य कहा है—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुलेनित्य, कल्याण तत्रवैध्रुवम् ॥१॥

अर्थात् जिस कुल में स्त्री से पति सन्तुष्ट[5] रहता है तथा पति से स्त्री सन्तुष्ट रहती है उस कुल का अवश्य कल्याण होता है॥ १॥

१—अति कठिन २—शिक्षा से युक्त। ३—स्त्री पुरुष की प्रीति। ४—मिसाल। ५—प्रसन्न।

इसके विरुद्ध जहाँ पति और पत्नी में सर्वदा विक्षेप, ईर्ष्या और कलह रहता है उस कुल में लक्ष्मी का नाश होकर अलक्ष्मी अर्थात् दरिद्रता का निवास होता है। इन सब बातों का विचार कर प्रत्येक गृहस्थ का यह परम कर्तव्य है कि वह गृहस्थाश्रम के सुधार के लिए और उसके सुधार के द्वारा शेष आश्रमों के सुधार के लिए स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान दे, क्योंकि स्त्री शिक्षा के बिना गृहस्थाश्रम का वास्तविक[1] सुधार और उससे होने वाला सच्चा सुख कदापि नहीं हो सकता है।

हमारे बहुत से भोले भाइ अपनी अज्ञानता[2] के कारण स्त्री शिक्षा से विरोध करते हैं। अर्थात् स्त्री शिक्षा को अच्छा नहीं बतलाते हैं, वे उसके लिए मन कल्पित[3] प्रमाण यह देते हैं कि "पढ़ने से स्त्रियां बिगड जावेंगी, पति की आज्ञा में न रहकर स्वतन्त्र[4] हो जावेंगी, प्रत्येक कार्य में पति का सामना करेंगी' इत्यादि, ये उन लोगों क परम मूर्खता के विचार हैं, क्योंकि विद्या एक ऐसी

१—सच्चा। २—मूखता। ३—मनमान। ४—स्वाधीन।
५—बेवकूफी।

वस्तु है कि वह पास में होने से कदापि किसी का किसी प्रकार का भी बिगाड़ नहीं कर सकती है, फिर वह स्त्रियों का बिगाड़ कैसे कर सकती है, विद्या तो वास्तव में एक मधुर फल के बीज के समान है, उसे चाहे जहाँ डाल दो, मधुर फल ही उत्पन्न होगा, किञ्च विद्या एक दीपक[1] के समान है, दीपक को चाहे जहाँ रक्खा जावे, अवश्यमेव प्रकाश करेगा, इसी प्रकार विद्यारूपी दीपक जिसके पास होगा उसका अन्तःकरण अवश्यमेव प्रकाशयुक्त[2] बन जावेगा। हम उन लोगों से यह भी पूछना चाहते हैं कि यदि विद्या से स्त्रियों का बिगाड़ होता है तो उससे सीता, द्रौपदी, विदुला, लीलावती और सावित्री आदि स्त्रियों का बिगाड़ क्यों नहीं हुआ ? यदि विद्या स्त्रियों के लिए बिगाड़ करने वाली है तो उससे पूर्वोक्त स्त्रियों का भी बिगाड़ अवश्य होना चाहिये था।

अब वे लोग जो यह कहते हैं कि "विद्या पढ़ने से स्त्रियाँ पति की आज्ञा में न रहकर स्वतन्त्र[3] हो जावेंगी तथा प्रत्येक कार्य में पति का सामना करने लगेंगी" सो

१—दीये। २—प्रकाश वाला। ३—स्वाधीन।

यह उनका कथन बिलकुल अनभिज्ञता[1] का सूचक[2] है, देखो! विद्या एक ऐसा उत्तम पदार्थ है कि वह भीतरी नेत्रों को खोल देता है, हृदय में सत्य ज्ञान को उत्पन्न कर देता है, अन्त करण में शुभ संस्कारों को जागृत करता है, बुद्धि को शुद्ध करता है, आत्मा को बलिष्ठ[3] बनाता है, मन की चंचलता[4] को दूर करता है, दुराग्रह[5] और मिथ्या हठ को हृदय से निकाल देता है तथा कर्तव्य का सद्ज्ञान कराके मनुष्य को कर्तव्यनिष्ठ[6] बनाता है, भला ऐसी दशा में विद्या को पाकर स्त्रियों को उसका विपरीत[7] फल कैसे मिल सकता है? खेद का विषय तो यह है कि स्त्रीशिक्षा के विरोधी लोग वास्तव में सद्विद्या के स्वरूप को ही नहीं समझते हैं, वे केवलमात्र अक्षराभ्यास के द्वारा नागरी की पुस्तक बाँच लेने मात्र को विद्याभ्यास समझते हैं, हा यह अवश्य सम्भव है कि ऐसे विद्याभ्यास से

१—मूर्खता। २—बतलाने वाला। ३—बलवान। ४—अस्थिरता, चंचलपन। ५—दुष्टजिद। ६—कर्तव्य में तत्पर। ७—उलटा।

वस्तु है कि वह पास में होने से कदापि किसी का किसी प्रकार का भी बिगाड़ नहीं कर सकती है, फिर वह स्त्रियों का बिगाड़ कैसे कर सकती है, विद्या तो वास्तव में एक मधुर फल के बीज के समान है, उसे चाहे जहाँ डाल दो, मधुर फल ही उत्पन्न होगा, किञ्च विद्या एक दीपक[१] के समान है, दीपक को चाहे जहाँ रक्खा जावे, अवश्यमेव प्रकाश करेगा, इसी प्रकार विद्यारूपी दीपक जिसके पास होगा उसका अन्तःकरण अवश्यमेव प्रकाशयुक्त[२] बन जावेगा। हम उन लोगों से यह भी पूछना चाहते हैं कि यदि विद्या से स्त्रियों का बिगाड़ होता है तो उससे सीता, द्रौपदी, विदुला, लीलावती और सावित्री आदि स्त्रियों का बिगाड़ क्यों नहीं हुआ ? यदि विद्या स्त्रियों के लिए बिगाड़ करने वाली है तो उससे पूर्वोक्त स्त्रियों का भी बिगाड़ अवश्य होना चाहिये था।

अब वे लोग जो यह कहते हैं कि "विद्या पढ़ने से स्त्रियाँ पति की आज्ञा में न रहकर स्वतन्त्र[३] हो जावेंगी तथा प्रत्येक कार्य में पति का सामना करने लगेंगी" सो

१—दीवे। २—प्रकाश वाला। ३—स्वाधीन।

यह उनका कथन बिलकुल अनभिज्ञता[1] का सूचक[2] है, देखो! विद्या एक ऐसा उत्तम पदार्थ है कि वह भीतरी नेत्रों को खोल देता है, हृदय में सत्य ज्ञान को उत्पन्न कर देता है, अन्तःकरण में शुभ संस्कारों को जागृत करता है, बुद्धि को शुद्ध करता है, आत्मा को बलिष्ठ[3] बनाता है, मन की चंचलता[4] को दूर करता है, दुराग्रह[5] और मिथ्या हठ को हृदय से निकाल देता है तथा कर्तव्य का सद्‌ज्ञान कराके मनुष्य को कर्तव्यनिष्ठ[6] बनाता है, भला ऐसी दशा में विद्या को पाकर स्त्रियों को उसका विपरीत[7] फल कैसे मिल सकता है? खेद का विषय तो यह है कि स्त्रीशिक्षा के विरोधी लोग वास्तव में सद्विद्या के स्वरूप को ही नहीं समझते हैं, वे केवलमात्र अक्षराभ्यास के द्वारा नागरी की पुस्तक बाँच लेने मात्र को विद्याभ्यास समझते हैं, हाँ यह अवश्य सम्भव है कि ऐसे विद्याभ्यास से

१—मूर्खता। २—बतलाने वाला। ३—बलवान। ४—अस्थिरता, चंचलपन। ५—दुष्टजिद। ६—कर्तव्य में तत्पर। ७—उलटा।

कु संस्कार से युक्त किन्हीं स्त्रियों का कुछ बिगाड़ हो भी सकता है, इसमें आश्चर्य की बात नहीं है।

वास्तव में धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और वेदान्त आदि सच्छास्त्रों के अभ्यास के द्वारा जो ज्ञान संपादन[1] करना है उसे सद्विद्या कहते हैं और इस सद्विद्या से किसी का कभी और कथञ्चित्[2] भी बिगाड़ नहीं हो सकता है, इस विषय में विशेष कथन करना अनावश्यक है, सारांश[3] यह है कि सर्वतन्त्र सिद्धान्त से यह बात सिद्ध हो चुकी और मानी जा चुकी है कि पुरुषों की सत् शिक्षा के समान स्त्रियों की भी सत् शिक्षा होने से ही गृहस्थाश्रम के सुधार के द्वारा सर्व आश्रमों का सुधार हो सकता है, और सत् शिक्षा के ही द्वारा स्त्री और पुरुष अपने कर्तव्य का पालन कर आत्मकल्याण के भागी हो सकते हैं इसलिए स्त्रियों को अवश्य शिक्षासम्पन्न[4] बना कर उनका गौरव किया जाना चाहिये। आजकल जो स्त्री जाति का अपमान[5] किया जा रहा है वह सर्वथा निन्द्य[6]

१—ज्ञानप्राप्ति। २—किसी प्रकार। ३—मतलब।
४—शिक्षिता। ५—अनादर। ६—निन्दा के योग्य।

और पुरुषों का अनुचित व्यवहार कहा जा सकता है, देखो मनुजी ने कहा है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया ॥१॥
तस्मादेता सदा मान्या, भर्तृभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥२॥

अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार किया जाता है वहाँ सर्व देव विलास करते हैं, किन्तु जिस कुल या घर में इन का सत्कार नहीं किया जाता है वहां सर्व दान और पुण्य आदि पवित्र क्रियायें भी निष्फल[1] होती हैं ॥ १ ॥ इसलिए पतियों को तथा देवरों को स्त्रियों का सर्वदा मान करना चाहिये तथा वस्त्र और आभूषण[2] आदि के द्वारा इनका सम्मान[3] कर इन्हें प्रसन्न रखना चाहिये ॥ २ ॥ स्त्रियों का अपमान[4] करने वाले तथा उनको तुच्छ समझने वाले जनों को इन वाक्यों से शिक्षा लेकर उन्हें उनके साथ समुचित वर्त्ताव करना चाहिये और वह उनके साथ उनका समुचित वर्त्ताव यही है कि वस्त्र, भोजन और आभूषण आदि के द्वारा वे उनका

१—व्यर्थ । २—जेवर । ३—आदर । [illegible] ।

लौकिक[1] ज्ञान करें तथा उन्हें सद्विद्या, सच्छिक्षा और सद्विज्ञान से सम्पन्न[2] बना कर उनको पारलौकिक[3] ज्ञान करें, अर्थात् परलोक में उनको आत्मकल्याण की प्राप्ति करावें, ऐसा करने से "उभय हाथ मुद मोदक" की कहावत चरितार्थ[4] होगा, अर्थात् गृहस्थाश्रम का सुधार होगा, उसके साथ सुख की प्राप्ति होगा शेष आश्रमों का सुधार होकर उनकी समुन्नत[5] दशा होगी तथा निज कर्त्तव्य पालन के द्वारा इस संसार में अक्षय[6] कीर्ति पताका लहराती रहेगी और परलोक में अनुपम[7] आत्म कल्याण का लाभ होकर अविनाशी शान्ति सुख की प्राप्ति होगी।

इस विषय में अब विशेष कथन न कर लेख को बात केवल यही कहना है कि बातों का विस्तार कर आगे की सुधि लीजिये, स्त्री शिक्षा के अभाव[8] से अनेक बड़ी २ हानियाँ हो रही हैं उनको अपने पौरुष[9] के द्वारा स्त्री शिक्षा का प्रचार कर अर्थात् स्त्रियों और बालिकाओं को

१—लोकसम्बन्धी। २—युक्त। ३—परलोक सम्बन्धी। ४—पूर्ण। ५—उच्च। ६—अविनाशिनी। ७—अपूर्व। ८—कमी। ९—पुरुषार्थ।

शिक्षासम्पन्न[1] कर दूर कीजिये, इस विषय में उद्योग किये बिना आपका और जगत् का कल्याण कदापि नहीं हो सकता है, आगे चल कर भार्यारूप को प्राप्त होने वाली मृदु[2] बालिकायें पूर्णवयस्का[3] होकर और गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर आपकी प्रदान की हुई या कराई हुई सत् शिक्षा के द्वारा जब आनन्दभागिनी बनेंगी उस समय उनके विशुद्ध भाव से निकला हुआ आपके लिए शुभाशीर्वाद न जाने आपके और आपके कुटुम्ब के लिए कितना कल्याणकारी होगा, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। सैकड़ों कन्यायें पूर्व सत्कार वश विद्याध्ययन के लिए तरस रही हैं, अपने भाइयों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध देख कर तथा अपने लिए शिक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न देख कर मन को मार उदासीन हो लम्बी साँसें भरकर सर्वज्ञ भगवान् को पुकार कर कह रही हैं कि:—

दयानिधि कर दो बेड़ा पार ॥ टेक ॥
तुम स्वामी हो सकल जगत् के निखिल विश्व आधार।
घट घट की तुम वेदन जानत, करत दीन उद्धार।
दयानिधि० ॥ १।

१—शिक्षायुक्त। २—कोमल। ३—पूरी अवस्थावाली।

सकल विश्व रचि तुमही पोषत, ताको करत सँभार।
मुनिजन सबही तुव गुण गावत, करत आत्म उद्धार॥
दयानिधि० ॥ २॥

जगमाया के फन्दहिं फँसि नर, भूलत तुव हित-प्यार।
ज्ञानी जन तव भक्ति निरत ह्वै पावत निरुपम सार॥
दयानिधि० ॥ ३

पाप पुंज को तिमिर छयो हिय सूझत वार न पार।
विद्या ज्योति पसारहु स्वामी, भय दुख होवहिं छार॥
दयानिधि० ॥ ४॥

सकल आश्रम भ्रष्ट भयो है, गृहि आश्रम नि सार।
याको हेतु जगत विदित है, मूरख हैं सब नार॥
दयानिधि० ॥ ५॥

मातु पिता का हु ध्यान नहीं है, निज बाला हित सार।
नहीं इन कौं शिक्षा तनिकहुँ, कैसे हो निस्तार॥
दयानिधि० ॥ ६॥

पुत्र भये सब खुशी मनावहिं, नृत्य गीत करि ढार।
पुत्री जन्म सुनत हिय सूखत, रोवत अँसुवन ढार॥
दयानिधि० ॥ ७॥

हम हैं क्या अँगजा नहिं तिनकी, जो वे करत न सार।
हृदयविदारक हम कहँ जान, मातुपिता धिक्कार ॥
दयानिधि० ॥ ८ ॥

एम ए. बी ए पढ़ावत पुत्रन, खरचत वित्त अपार।
बाला शिक्षा पैसा खरचत, बनत कृपण सरदार ॥
दयानिधि० ॥ ९ ॥

शिक्षा हीन हम गृहस्थ में जावें, कैसे करें सँभार।
फूहड़ कहि सब हम कहँ बोलत, सहें दुःख बेपार ॥
दयानिधि० ॥ १० ॥

पुत्री शिक्षा हेत सबन मन, उपजावहु रुचि सार।
जातें सुधरहिं सकल आसरम, अरु होवे निस्तार ॥
दयानिधि० ॥ ११ ॥

जगपोषक सर्वज्ञ प्रभूजी, सर्व जगत आधार।
सद्‌बुद्धी पितु मातहिं देवहु, हमारी करें सँभार ॥
दयानिधि ॥ १२ ॥

नारी शिक्षा पूरण प्रेमी, होंय पिता सिरदार।
पूर्ण ध्यान दे हमहिं पढ़ावें, जिहि ते होय [illegible]

सकल विश्व रचि तुमहीं पोषत, ताकी करत ...
मुनिजन सबही तुव गुण गावत, करत आत्म-उद्...
दयानिधि०

जगमाया के फन्दहिं फँसि नर, भूलत तुव हित ...
ज्ञानी जन तव भक्ति निरत हैं, पावत निरुपम ...
दयानिधि०

पाप पुञ्ज को तिमिर छयो हिय, सूझत आर न ...
विद्या ज्योति पसारहु स्वामी, भय दुख होवहिं ...
दयानिधि० ॥ ...

सकल आश्रमन मूल भयो है, गृहि आश्रम ...
याको हेतु जगत विदित है, मूरख हैं सब नार ...
दयानिधि० ॥ ५

मातु पिता को हु ध्यान नहीं है, निज बाला हित सार ...
नहीं देत हैं शिच्छा तनिकहुँ, कैसे हो निस्तार ।
दयानिधि० ॥ ६ ।

पुत्र भये सब खुशी मनावहिं, नृत्य गीत करि द्वार ।
पुत्री जन्म सुनत हिय सूखत, रोवत अँसुवन ढार ॥
दयानिधि० ॥ ७ ॥

ले आओ और देखो कि उन्होंने नाशवान् ससार से आस्था को हटाकर किस प्रकार परोपकार और भगवद्-भजन के द्वारा अपने जन्म को सार्थक[1] किया था, वैसा ही स्वय करने की चेष्टा करो, सासारिक विलास एक न एक दिन अवश्य हमारा साथ छोड देगा, यह विचार कर धोखा देने वाले साथी का साथ स्वय छोड कर उस साथी का साथ पकडो जो इस लोक में तो क्या किन्तु परलोक में भी तुम्हारा साथी रहे, ससार को सराय जान कर यथेष्ट स्थान पर पहुँचने का लक्ष्य सदा हृदय में रक्खो "मनुष्य जन्म उत्कृष्ट[2] पुण्य और तप से प्राप्त होता है" यह समझ कर पूर्वोक्त रत्न का सदुपयोग करो, तुमने दु ख सागर से पार होने के लिए उत्कृष्ट पुण्यरूपी मूल्य से इस शरीर रूपी नौका को खरीदा है इसलिए जब तक यह शरीर रुपी नौका टूट न जावे तब तक दु ख सागर के पार उतर जाओ, यदि इन सब बातों का मनन कर तुम कर्तव्य-परायण[3] बन जाओगे तो शीघ्र ही तुम्हारा और जगत् का कल्याण होगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

१—सफल। २—बडे। ३—कर्तव्य में तत्पर।

बालिकाओं की उक्त प्रार्थना को सुनकर सावधान हो जाओ, प्रमाद निद्रा[१] को दूर कर दो आलस्य को अपना वैरी जान उसका तिरस्कार करो, ससार की सारता और असारता की ओर अपना लक्ष्य[२] ला जाओ, परलोक के सुख को एक अमूल्य पदार्थ समझो, ससार में फाँसे के रहने को मानव जन्म का साफल्य[३] समझो, जीवन ससार और उसके सब पदार्थों को विनश्वर[४] जानकर उनको परोपकार में लगाकर सार्थक[५] करो, सब संसार को अपना कुटुम्ब जानकर उसके कल्याण और हित के लिए अपने को और अपना सामग्री को उपयुक्त कर अपने मानव जन्म को सफल करो, "किया हुआ पाप और पुण्य ही मरने पर मनुष्य के साथ जाता है" यह विचार कर प्रत्येक दिन, प्रत्येक पहर, प्रत्येक मुहूर्त, प्रत्येक घड़ी और प्रत्येक क्षण को पुण्यार्जन[६] के द्वारा सफल करो। शरीर अनित्य और नाशवान है उस पर आस्था को न कर उसके द्वारा सद्गुणों का उपार्जन कर नित्य और निर्मल यश का उपार्जन करो अपने पूर्वजों की ओर अपना लक्ष्य[७]

१—गफलत की नींद। २—ध्यान। ३—सफलता। ४—नाशवान। ५—सफल। ६—पुण्यप्राप्ति। ७—ध्यान।

ले जाओ और देखो कि उन्होंने नाशवान् ससार से आस्था को हटाकर किस प्रकार परोपकार और भगवद्-भजन के द्वारा अपने जन्म को सार्थक[1] किया था, वैसा ही स्वय करने की चेष्टा करो, सासारिक विलास एक न एक दिन अवश्य हमारा साथ छोड देगा, यह विचार कर धोखा देने वाले साथी का साथ स्वय छोड कर उस साथी का साथ पकडो जो इस लोक में तो क्या किन्तु परलोक में भी तुम्हारा साथी रहे, ससार को सराय जान कर यथेष्ट स्थान पर पहुँचने का लक्ष्य सदा हृदय में रक्खो "मनुष्य जन्म उत्कृष्ट[2] पुण्य और तप से प्राप्त होता है" यह समझ कर पूर्वोक्त रत्न का सदुपयोग करो, तुमने दु ख सागर से पार होने के लिए उत्कृष्ट पुण्यरूपी मूल्य से इस शरीर रूपी नौका को खरीदा है इसलिए जब तक यह शरीर रूपी नौका टूट न जावे तब तक दु ख सागर के पार उतर जाओ, यदि इन सब बातों का मनन कर तुम कर्तव्य-परायण[3] बन जाओगे तो शीघ्र ही तुम्हारा और जगत् का कल्याण होगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

१—सफल। २—बडे। ३—कर्तव्य में तत्पर।

परिशिष्टभाग

श्री ग्रन्थकर्त्री जी महोदया का गुरुपारम्पर्य

(संशोधक की ओर से)

श्रीयुत विद्यावारिधी साधु वर्य सुजान।
मुनिवर छग्न जी पूज्य थे, सम्प्रदाय महँ जान ॥ १ ॥
तिन के शिष्य विदानु जी, पूज्य वर्य गुण खान।
परम तपस्वी ध्यान रत, जासु होत गुण गान ॥ २ ॥
तिन्ह के शिष्य मुनीश्वर, मन जी थे महराज।
पूज्य पदहिं सुशोभित, सबै सुधारे काज ॥ ३ ॥
इन्ह के ज्येष्ठ सुशिष्य थे पूज्यवर्य मुनिराज।
श्रीयुत नाथूराम जी, सब साधू सिरताज ॥ ४ ॥
इन्ह के सताईस थे, शिष्यवर्य गुणरास।
ध्यानी ज्ञानी भक्ति रत, जासु जगत यशभास ॥ ५ ॥
सकल शिष्य महँ ज्येष्ठ थे लक्ष्मिचन्द्र महाराज।
परहित हेत कियो हुतो, जिहिं सन्मुखो ■ साज ॥ ६ ॥

इन्हके शिष्य सुयोगरत[1], छत्रमल्ल महाराज।
जिन्ह के सद उपदेश तें, गयो तिमिर[2] सब भाज॥ ६॥
इन्ह के शिष्यहु तीनि थे, ज्ञानी वर्य प्रधान।
पूज्यरतन शशि[3] पूज्यवर, रैजाराम सुजान॥ ८॥
उत्तमचन्द्र तृतीय थे, पूज्यवर्य गुण खान।
गुणमहिमा इन की हुती, सब जग में परधान॥ ९॥
रत्नचन्द्र महाराज के, भज्जूलाल सुजान।
शिष्य हुते विद्या प्रवर, सर्व गुणन की खान॥१०॥
पूज्यवर्य भज्जुलालजी, सकल शास्त्र परवीन।
फारसि अरबी संस्कृत, परमुख[4] भाष[5] प्रवीन[6]॥११॥
गद्य पद्य मय ग्रन्थ रचि, कियो जगत उपकार।
ध्यानभक्ति रत ह्वै पुनः, कियो आत्म उद्धार॥१२॥
विद्यागार[7] बनारसी, पुरी जाय जिन्ह कीन्ह।
भूरि[8] बुधन तें वाद हु, जीति पराभव दीन्ह॥१३॥
याही गुण अजहूँ लिख्यो, बुधजन माहीं नाम।
गिरा[9] कथन नहिं करि सकत, श्रीजी के गुणग्राम॥१४॥

१—सुन्दर योग में तत्पर। २—अँधेरा। ३—रत्नचन्द्र जी। ४—आदि। ५—भाषाओं में। ६—चतुर। ७—विद्या का घर। ८—बहुत से। ९—वाणी।

मज्जूलाल महराज के, पन्नालाल सुजान।
शिष्य हुते तापस प्रवर, धीर महा मतिमान ॥१५॥
छतिस बरस लौं छाछ पिय, करी तपस्या भूर।
बेल बल पारना, किया कर्म चकचूर ॥१६॥
बेला पारन में हुये, लेत हुते नहि तोय[1]।
सर्व विरति गहि निर्मला किये आत्मा धोय ॥१७॥
प्रहर शेष आतापना, सेयि निदाघ[2] के माहिं।
वस्त्र विहीनहु रहत थे, शीततूं के माँहिं ॥१८॥
अगरचन्द पारख सुत, बीकानेर के माँहि।
तिनही के थे आतमज[3], गुणवरने नहि जाहिं ॥१९॥
साल सत्त दश महँ लिनी, दीक्षा[4] सुध मन भाय।
कठिन तपस्या कीन्ह जिहिं, सकल कर्म फल जाय ॥२०॥
या सुपाट शोभित अहैं, पूज्यवर्य सद ज्ञान।
मोतीलाल सुनाम के, धीर भवि मतिमान ॥२१॥
श्रीयुत राजाराम के, शिष्य हुते धीमान।
रामलाल नामक सुधी, धीर वीर सज्ञान ॥२२॥

१—पानी का जल। २—ग्रीष्म ऋतु। ३—पुत्र।
४—दीक्षा।

रामलाल महराज के, शिष्य अहैं मतिमान ।
शुभ्रांश्वन्त फकीरजी[1] पुष्पचन्द्र[2] सज्ञान ॥२३॥
ज्ञानी ध्यानी भक्त वर, विद्यावन्त महान ।
परहित रत हैं अहर्निश[3], होत लोक यश गान ॥२४॥
इनहीं के टोले भई, धर्माजी महाराज ।
सती शिरोमणि आरजाँ, किये भूरि[4] शुभकाज ॥२५॥
दूजी कुंवर सदेवजी, हुतीं धर्मरत भूर[5] ।
धारि तपस्या जिन कियो, सकल कर्म चकचूर ॥२६॥
राय कुंवर तीजी हुतीं, सद्गुण की जो खान ।
तिन्ह के यश को लोक में, होत अहर्निश[6] गान ॥२७॥
इनही की शिष्या हुतीं, चम्पाजी महराज ।
सती शिरोमणि आरजाँ, आरजन महँ सिरताज ॥२८॥
शतशः[7] तपकरि जिनकियो, सकल कर्म मल दूर ।
सद्गुण भानु[8] प्रकाशकरि चमकायो जगनूर ॥२९॥

१—फकीरचन्द जी । २—फूलचन्द जी । ३—रात दिन । ४—बहुत से । ५—अत्यन्त ही । ६—रात दिन । ७—सैकड़ों । ८—सूर्य ।

भूरसुन्दरी त्रिपथ त्रिनाम प्रगट सहँ कान्ह ।
गावतु भक्ति संगत में, ध्यान सदा सुख ह ।।
इतना का जिनसा यहँ भूर सुन्दरी कथ्य ।
गावा त्रिलामनि आनन्द, सदगुरु का है ध्यान ।।१।।
विद्या वर सुभाव है, पर्वहित सहँ ध्यावना ।
वर्णित त्रिभुवन नाम में, मुनिवर गुन गन ह्वै ।
सम्पान्न सन्ताप में, विपा मोह उदोत ।
मार त्रिमिर करै दूर वर्ति, ध्यान दगारा अंत ।।३।।
मान प्रगट पूरन रूप, नीधरूपो मद मग ।
पावह आन न्दाप के, वरननारा सन पन्ना ।।४।।
पावक पद त्रिनाकहू, सुप मन तें मद प्रगा ।
मार त्रिमिर मारे सकल, धीरे धरि धो पन्ना ।।५।।

नाम सुभाव परिच्छेद

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थ ॥

१—[illegible] । २—पद्य । ३—[illegible] । ४—[illegible]
५—इसिव । ६—स [illegible] । ७—[illegible] । ८—[illegible] ।

॥ श्रीः ॥

शुद्धाशुद्ध-पत्र ।



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१ सम०	१०	प्रसंशा	प्रशंसा
१ प्र०	१	श्री	श्रीः
३ प्र०	१४	बुद्धि के	बुद्धि की
,,	१७	अनुमित	अनुमति
९ मंग०	२	परमेनिष्ठने	परमेष्ठिने
९ मं०	५	थिम	थित
३	१४	भयपूर्यं	भयरायं
,,	१७	तित्थपर	तित्थयर
,,	,,	इतरिय	इनरिय
२७	१५	निमिरि	निमिर
३०	६	तरुफलै६	तरु६ फलै
३४	१	महाचय	महाचर्य
,,	६	जंहि	नहिं
३५	१८	छोदंदो	७-छोदंदो

भूरसुन्दरी विवेक विलास ग्रन्थ महँ कीन्ह ।
यासु चरित संक्षेप तें, वर्णन लेवहु चीन्ह ॥३०॥
इनही की शिष्या अहैं, भूर सुन्दरी नाम ।
सती शिरोमणि आरजाँ, सद्गुण की हैं धाम[1] ॥३१॥
विदुषी वर्य सुजान हैं, परहित महँ परवीन[2] ।
परहित जिन हैं लोक में, भूरिकाज शुभ कीन ॥३२॥
सद्वाणी परभाव तें, कियो लोक उद्योत[3] ।
मोह तिमिर कहँ दूर करि, ज्ञान पसारी जोत ॥३३॥
तीन ग्रन्थ पूरव रचे, चौथ रच्यो यह ग्रन्थ ।
पाखँड जाल हटाय के, बतलायो सत पन्थ[4] ॥३४॥
पाठक वर्य विलोकहू[5], शुध मन तें यह ग्रन्थ ।
मोह तिमिर[6] नासै सकल, दीसै कृति[7] को पन्थ[8] ॥३५॥

इति तृतीय परिच्छेद

* समाप्तश्चायं ग्रन्थ *

१—स्थान । २—चतुर । ३—प्रकाश । ४—सन्मार्ग
५—देखिय । ६—मोहान्धकार । ७—कर्त्तव्य । ८—मार्ग ।

॥ श्री ॥

शुद्धाशुद्ध-पत्र ।



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१ सम०	१०	प्रसशा	प्रशसा
१ प्र०	१	थी	श्री
६ प्र०	१४	बुद्धि के	बुद्धि की
"	१७	अनुमित	अनुमति
४ मग०	२	परमेनिष्ठने	परमेष्ठिने
६ म०	५	थिन	थित
३	१४	अयएग	अयराग
"	१७	तिरथपर	तित्थयर
"	"	इतरिय	इनरिय
२७	१५	निमिरि	तिमिर
३०	६	तरुफलँ[६]	तरु[६] फलँ
३४	१	ब्रह्मचय	ब्रह्मचर्य
"	६	जाँहि	नहिं
३५	१८	छोड्दो	७-छोड्दो



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	११	पच	पञ्च
१८	६	प च	पाच
४४	३	अधिस्वन्	अर्हत्वन्
"	१८	कदुना	कटुना
"	११	कर्कशा	कटुता
४६	१८	परिताप	पर-ताप
४८	१२	मातृगीता	मानवगीता
५१	७	डालदा१	डोलदो१
"	"	ईस१०	ईस
"	"	करै	करैं
"	८	काज	काज१०
"	११	पन्त१२	पन्त
"	११	पुन्त	पुन्त१२
"	१३	राधापनी	राधापति
"	१४	बपे	बचे
"	१५	७–दान	७–दाना
"	"	६–रावसा	६–डोलिया
"	"	१०–म-दोदरी।	१०–रावण और म दोदरी
५३	४	वे	वह

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३	४	आश्रमों मे	आश्रमों के
,,	६	सुधारविद्वत्ता	सुधार है जो कि विद्या
४४	२	चरकमल	चरणकमल
४६	७	एसेसी	एसे ही
,	८	सतीयों	सतियों
४७	७	भगवान	भगवान्
,,	६	शाक्षी	साक्षी
,,	१७	महान	महान्
४८	२	रखी	रक्खी
,,	७	मर्णान्तक	मरणान्त
,	१०	वे	यह
,,	११	राजदारा	राजदारान्
,,	११	इसको	इनको
,,	१६	वो	वे
,,	,,	सतीपत्या	सती
,,	१७	पती	पति
,,	१८	स्वेच्छाचारी	स्वेच्छाचारिणी
,,	,,	वो	वह
४६	२		जो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५६	२	वो	वे
"	"	स्त्री	स्त्रियाँ
"	"	अधिकारी	अधिकारिणी
"	३	है	हैं
"	"	त्रिकरण	त्रिकरण
"	४	वो	यह
"	८	विद्वान्	विदुषी
"	११	वर्णन करते हैं	वर्णन है तदनुसार
"	१३	वे	यह
६०	१०	निजकुल१	निज१ कुल
६१	६	विद्याभ्यास	विद्याभ्यास
६३	९	करत	करती
६४	१०	सम्यक्तया	सम्यक्तया
७१	१५	बलवान	बलवान्
७३	१०	मूख	मूख
७७	१४	हमारी	हमरी

इति।

जैन दर्शन में
तत्त्व-मीमांसा